Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NAGRI PRCHARNI G.K.V.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110739

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

RT-912
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक)

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी.

वर्ष ५२–अंक ३ [नवीन संस्करण] सं० २००४

कार्त्तिक-पौष

विषय-सूची

मालवा का प्रद्योत राजवंश—श्री सूर्यनारायण व्यास ८९
अपभ्रंश भाषा के कतिपय अन्य दिगंबर जैन ग्रंथ—श्री अगरचंद नाहटा १०२
'आलम' की कृतियाँ—श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र १०९
समीक्षा ११७
सूचनिका १२६
संपादकीय १२७

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'पत्रिका' के उद्देश्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।

२—हिंदी-साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।

३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।

४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

सहायक

शिवनाथ

विशेष सूचनाएँ

(१)

'सभा' की प्रबंध-समिति ने ७ ज्येष्ठ, सं० २००४ के अधिवेशन में निश्चय किया है कि जिन परिवारों में एक से अधिक व्यक्ति 'सभा' के सभासद हों उनमें से एक को छोड़कर शेष व्यक्तियों को चंदे के अतिरिक्त १) और देनेपर 'सभा' द्वारा प्रकाशित ५) अंकित मूल्य की पुस्तकें 'पत्रिका' की जगह मिल सकेंगी।

(२)

साधारण सभा के शनिवार, १० श्रावण, सं० २००४ के अधिवेशन में यह निश्चय हुआ कि 'सभा' की साधारण सदस्यता का चंदा अगले साल से ३) से ५) कर दिया जाय।

मूल्य प्रति अंक २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110739
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110739

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५२—अंक ३ [नवीन संस्करण] कार्त्तिक-पौष—सं० २००४

मालवा का प्रद्योत राजवंश

श्री सूर्यनारायण व्यास

प्रसिद्ध संवत्-प्रवर्तक महावीर शकारि विक्रमादित्य ने संवत् की स्थापना के साथ ही जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण राजनीतिक कार्य किया वह था मालवा में गण-शासन-पद्धति की पुनःस्थापना। मालवों के कुछ परिचय तथा उनके और क्षुद्रकों के परस्पर संबंध के विषय में लोग जानते हैं। विक्रमादित्य के शासन-काल की घटनाओं के समझने, उनके अस्तित्व को हृदयंगम करने एवं उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों को जानने के लिये उनसे पूर्व काल के राजाओं का जितना ऐतिहासिक ज्ञान हो सके उतना ही अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार के ज्ञान से विक्रमादित्य के जीवन का भी उद्घाटन होगा।

महाराज विक्रमादित्य के उदय-काल से पूर्व के राजाओं की वंशावलियाँ पुराणों से प्राप्त होती हैं, जो महात्मा बुद्ध और महावीर गौतम के समय के पूर्व से भी आरंभ होकर अभीष्ट काल तक शृंखलाबद्ध चली आती हैं। जैन और बौद्ध इतिहासकारों द्वारा किए गए उल्लेखों से इन वंशावलियों की पुष्टि होती है। इससे पौराणिक इति-क्रम का विशेष उद्घाटन भी होता है। अतः यहाँ हम उनको भी भुला नहीं सकते।

महावीर या जैन संवत् का आरंभ विक्रम-संवत् से ४७० वर्ष पूर्व एवं शकाब्द से ६०५ वर्ष पूर्व माना जाता है। इसी प्रकार अनेक जैन विद्वानों ने गणना कर विक्रम-संवत् का आरंभ भी ४७० महावीर निर्वाण-संवत् में स्वीकार किया है। यहाँ एक उद्धरण देना यथेष्ट होगा—

मह मुक्खगयणाओ पालय-नंद-चंदगुत्ताइ राइसु बोलीणेसु चउसय सत्तरेहिं वासेहिं विक्कमाइच्चो राया हो ही। तत्थ सट्ठी वरिसाणं पालगस्स रज्जं पणपन्नसयं नंदाणं; अट्ठुत्तरं सयं मोरियवंसाणं, तीसं पूसमित्तस्स, सट्ठी बलमित्त भानुमित्ताणं, चालीसं नरवाहणस्स, तेरस गद्दभिलस्स, चत्तारि सगस्स। तओ विक्कमाइच्चो सो साहिय सुवण्णपुरिसो पुहविं अरिणं काउं निय संवच्छरं पवत्ते ही[1]।

१—श्री जिनप्रभ सूरि कृत पावाकल्प, पत्र ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावीर-निर्वाण के ४७० वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य राजा होगा। उससे पहले पालक, नंद, चंद्रगुप्त आदि राजा होंगे। इस ४७० वर्ष की अवधि के राजाओं की सूची इस प्रकार है—पालक ६० वर्ष, नवनंद १५५ वर्ष, मौर्यवंश १०८ वर्ष, पुष्यमित्र ३० वर्ष, बलमित्र भानुमित्र ६० वर्ष, नरवाहन ४० वर्ष, गर्दभिल्ल १३ वर्ष, शक राजा ४ वर्ष। इस प्रकार कुल ४७० वर्ष होता है। इसके पश्चात् विक्रमादित्य होगा। यह राजा सुवर्ण पुरुष को सिद्ध करेगा एवं पृथिवी को उऋण कर अपना संवत् भी चलाएगा।

इन राजाओं का शासन-काल अन्य जैन-ग्रंथों के अनुसार इस प्रकार लिखा प्राप्त होता है—

पट्टावली गाथा (प्राकृत)		हरिवंश पुराण	
पालक और प्रद्योत	६० वर्ष	पालक	६० वर्ष
नंद	१५५ ,,	नंद	१५५ ,,
मौर्यवंश	१०८ ,,	मौर्य	४० ,,
पुष्यमित्र	३० ,,	पुष्यमित्र	३० ,,
बलमित्र, भानुमित्र	६० ,,	अग्निमित्र, वसुमित्र	६० ,,
नरवाहन शक	४० ,,	गर्दभिल्ल रासभ	१०० ,,
गर्दभिल्ल	१३ ,,	नरवाह	४२ ,,
शक	४ ,,	शक	४ ,,
जोड़	४७०	जोड़	४९१

अन्यत्र भी एक गाथा इसी अभिप्राय की मिलती है, जो मेरुतुंग कृत 'स्थिविरावली' में उद्धृत है। इसका उत्तरार्द्ध 'कालकसप्तिका' में भी पाया जाता है। संपूर्ण गाथा प्रकीर्णक गाथा-पत्रों में अनेक जगह पाई जाती है। गाथा यह है—

विक्कम रज्जारम्भा पुरओ सिरी वीर निव्वुई भणिया।
सुंन्न मुँनि वेयँ जुत्तो विक्कम कालाउ जिणकालो।

पुराणों की अनुश्रुतियों के आधार पर अवंति और मगध की राजवंशावली अधिक विस्तृत और पूर्ण तैयार की जा सकती है। पुराणों द्वारा ऐसा ज्ञात होता है कि बृहद्रथ के वंशवालों की एक शाखा वीतिहोत्रिओं के नाम से अवंति में राज्य करती थी और दूसरी शाखा बृहद्रथ वंश के नाम से वाराणसी या मगध में। पुराणों के अनुसार अवंति-शाखा को पुलक ने एवं वाराणसी या मगध-शाखा को शुनक ने समाप्त कर अपने अपने पुत्रों का दोनों राज्यों पर क्रम से अभिषेक कर दिया। वर्णन-शैली एवं बृहद्रथ वंशियों के अंत करने के दोनों स्थानों के वर्णन के परस्पर अत्यधिक समान होने के कारण ऐसा लगता है कि एक ही व्यक्ति का उल्लेख दोनों स्थानों पर किया गया है। इससे यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमित होता है कि अवंति के राजवंश का उल्लेख करते समय लेखकों या लिपिकर्ताओं के प्रमाद से, अथवा संपादक की ही असावधानता से, शुनक के स्थान में पुलक लिखा गया है। इससे संबद्ध पुराणों के श्लोक नीचे दिए जाते हैं—

अवंति—

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु ।
पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति ।
मिषतां क्षत्रियाणां च प्रद्योतं पुलको बलात् ।
स वै प्रणत सामन्तो भविष्यो नयवर्जितः ।
त्रयोविंशत्समा राजा भविता मन्मथातुरः ।
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः ।
विशाखयूपो भविता नृपः पंचाशतं समाः ।
एक विंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति ।
भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो नन्दिवर्धनः ।
अष्टत्रिंशच्छतं भाव्या प्रद्योताः संच ते नृपाः[1] ।

मगध—

द्वात्रिंशति नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ।
पूर्णं वर्ष सहस्रन्तु तेषां राज्यं भविष्यति ।
जयतां क्षत्रियाणां च बालकः पुलको भवेत् ।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति ।
वाराणस्यां सुतं स्थाप्य स यास्यति गिरिव्रजम् ।
शिशुनाकश्च वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ।
काकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशत्प्राप्स्यते महीम् ।
ततस्तु विंशति राजा क्षेमधर्मा भविष्यति ।
चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजा प्राप्स्यते ततः ।
अष्टत्रिंशति वर्षाणि बिंबिसारो भविष्यति ।
अजातशत्रुर्भविता पंचत्रिंशत्समा नृपः ।
पंचत्रिंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति ।
उदायी भविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः ।
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम् ।
गंगाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ।
चत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नंदिवर्द्धनः ।
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति ।

१—देखिए मत्स्य पुराण, अध्याय २७२, श्लोक १–५। वायु पुराण, अध्याय ९९, श्लोक ३०९–१४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्येते भवितारो वै शैशुनाका नृपा दश ।
शतानि त्रीणि वर्षाणि षष्टि वर्ष शतानि तु ।
शिशुनाका भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः[1] ।

प्रसिद्ध जैन-ग्रंथ 'तिलोय-पराणत्ति' के अनुसार भगवान् महावीर के मोक्ष के समय अवंति में प्रद्योत का पुत्र पालक अभिषिक्त हुआ था—

जं काले वीर जिणो णिस्सेयस सम्पयं समावराणो ।
तक्काले अभिसित्तो पालयणामो अवंति सुदो ॥ ६५ ॥

शिशुनाकों के प्राचीन इतिहास के विषय में यहाँ कुछ विस्तारपूर्वक जानने की आवश्यकता है। शिशुनक वंश मूलतः काशी का राजवंश था। पुराणों के लेख के अनुसार प्राचीन काल में काशी में काशी, काश्य या काश्य-प वंश के राजा राज्य करते थे। 'ब्रह्मांड पुराण' के लेखानुसार यह वंश सुनहोत्र या सुहोत्र का वंश था। इसी वंश में दिवोदास और प्रतर्दन जैसे विजयी और बलवान् सम्राटों ने जन्म लेकर काशी का उद्धार तालजंघ आदि शत्रुओं से किया था। सुनहोत्र का एक पुत्र गृत्समद वैदिक ऋषि हो गया है, जिसकी रचना प्रधानतः 'ऋग्वेद' के दूसरे मंडल में संगृहीत है। गृत्समद का पुत्र शुनक और पौत्र शौनक था। इसी शुनक वंश की संतान शिशुनक, और शिशुनग भी, कही गई है। इसी से अपत्यवाचक शब्द शिशुनक, शिशुनाक, शिशुनाग, शैशुनाग आदि बन गए। अतः इस वंश का शुद्ध नाम शिशुनक या शिशुनाक मानना ही ठीक है, और सब नाम इसके विकार हैं। इस वंश का आरंभ विक्रम से ६५१ वर्ष या ईसा से ७०८ वर्ष पूर्व हुआ था। इसके प्रथम राजा शिशुनाग ने ४० वर्ष तक राज्य किया था। शेष राजाओं का राज्य-काल इस प्रकार है—

२—काकवर्ण ३६ वर्ष। कहीं कहीं ४० वर्ष भी लिखा है।

३—क्षेमधर्मा। २० वर्ष। कहीं कहीं इसका नाम क्षत्रधर्मा भी लिखा है।

४—क्षत्रौजा ४० वर्ष।

५—बिंबिसार ३८ वर्ष। कहीं कहीं इसका राज्य-काल २८ वर्ष लिखा है, जो अशुद्ध है। इसने एक विवाह अयोध्या की राजकुमारी से और दूसरा लिच्छवी राजकुमारी से किया था। महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर दोनों ही इस राजा के समकालीन थे।

६—अजातशत्रु ३५ वर्ष। इससे श्रावस्ती या अयोध्या के महाराज प्रसेनजित् से युद्ध हुआ। लिच्छवियों को इसने परास्त किया एवं वहाँ का राजा चैत्र या चेटक, जो इसका मामा था, मारा गया। चैत्र का पुत्र शोभनराज भागकर अपने श्वशुर कलिंग-

---

१—देखिए मत्स्य पुराण, अध्याय २७२, श्लोक ६-१३। वायु पुराण, अध्याय ९९, श्लोक ३१४-२२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति सुलोचन के यहाँ रहने लगा और वहीं उसने अपना वंश चलाया। इसके शासन के दूसरे वर्ष भगवान् महावीर का मोक्ष और आठवें वर्ष महात्मा बुद्ध का निर्वाण हुआ।

७—प्रद्योत २३ वर्ष। मथुरा के राजा धुंधुकार का प्रद्योत नामक बलशाली क्षत्रिय मंत्री था। पृथ्वीराज की मौसी के पुत्र जयचंद्र के यहाँ प्रद्योत, विद्योत आदि गए थे।[1] 'भविष्य पुराण' में इंद्रप्रस्थ के राजा का नाम प्रद्योत बताया गया है। उसकी कन्या का नाम परिमला था, जिसका विवाह कच्छप राजा के पुत्र कमलपति के साथ हुआ था।[2] 'महाभारत'[3] में लिखा है कि प्रद्योत कुबेर की सभा के एक यक्ष का नाम था।

सूर्यवंश के अंतिम नरेश रिपुंजय अथवा अरिंजय के प्रधान शुनक ने रिपुंजय की हत्या कर अपने पुत्र प्रद्योत को शासक बना दिया था। 'वायु पुराण' में शुनक के स्थान पर सुनीक नाम आया है। इस वंश में प्रद्योत, पालक, विशाखयूप, जनक अथवा अजय (नंदिवर्धन या नंदवर्धन अथवा वर्तिवर्धन) इन पाँच राजाओं के होने का उल्लेख है। इन्होंने १३९ वर्ष तक शासन किया था।[4] अनुमान से इनका शासन ई० पू० ७४५ से ६९० तक निश्चित किया जा सकता है।

'भविष्य पुराण' के लेखानुसार प्रद्योत क्षेमक का पुत्र है, परंतु क्षेमक अथवा शुनक एक ही थे। प्रद्योत के पिता का वध म्लेच्छ द्वारा हुआ था, अतः नारद के कहने पर उसने म्लेच्छ यज्ञ कराया था, जिसमें यज्ञ-कुंड सोलह कोसों का था। उसमें वेद-मंत्रों द्वारा आहूत हारहूण, बर्बर, गुरुंड, शक, खस, यवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव म्लेच्छों, आदि द्वीप के म्लेच्छों, कामरूप तथा समुद्र के मध्यस्थित चीन जाति के म्लेच्छों को उसने भस्म किया। इसी लिये प्रद्योत 'म्लेच्छहंता' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[5]

पुराणों में इसे पुलक (या शुनक) का पुत्र कहा है। किंतु 'कथासरित्सागर' में इसे महेंद्र का पौत्र और जयसेन का पुत्र कहा है। इसका अर्थ यही है कि पुलक या शुनक इसका पूर्वज था, एवं शिशुनक का नाम जयसेन रहा होगा। वीतिहोत्र वंश अत्यंत प्राचीन वंश था और महाभारत युद्ध के पश्चात् २० वीतिहोत्री सम्राट् अवंति में राज्य करते रहे। अंतिम वीतिहोत्री सम्राट् का मंत्री पुलक, शुनक, शिशुनक या जय-सेन था, जिसने राजा को मारकर अपने पुत्र प्रद्योत का अभिषेक वहाँ किया। प्रद्योत की सेना बहुत बड़ी और प्रचंड थी, अतः प्रद्योत 'महासेन' तथा 'चंड' की उपाधियों से प्रख्यात था। यह बहुत कामी था। किसी शबर या भील सरदार की कन्या अंगारवती

१—भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, ३।५।

२—वही, ३।२७।

३—महाभारत, स० १०, १६।

४—वायु पुराण, भाग १२।१; विष्णु पुराण ४।२२, ४२; वायु पुराण, २।३७।

५—भविष्य पुराण, स० १।४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विवाह कर इसने अपनी सेना को सुसंघटित एवं बलवान् बना लिया था, इसी लिये उसका आतंक भी विशेष था।

इसकी कन्या वासवदत्ता का विवाह वत्सराज उदयन से हुआ था। वत्सराज वंश और प्रद्योत के पुलक वंश का संबंध भी यहाँ जान लेना आवश्यक है। पुराणों के लेखानुसार दो वंश चले थे—(१) वत्स का वंश और (२) गर्ग का वंश। वत्स का वंश प्रधान वंश होने के कारण बहुत काल तक काशी में ही राज्य करता रहा। अलर्क, केतुमान् आदि ने इस वंश को प्रसिद्ध किया। मंदालसा जैसी विदुषी देवियों ने इस वंश की शोभा बढ़ाई। लगभग उसी काल में काशी के पश्चिम में वत्स राज्य की भी स्थापना हुई और यह वंश वत्स में आकर राज्य करने लगा। वत्स-शाखा का अंतिम राजा वेणिमान् निःसंतान मर गया और गार्ग्य अर्थात् गर्ग वंश का ही कोई राजकुमार वत्स की गद्दी पर बैठा। इस प्रकार लगभग १५ पीढ़ी पश्चात् ये दोनों शाखाएँ पुनः एक हो गईं। इस घटना को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि बृहद्रथों के यश के (मगध में) अंत होने पर शिशुनक वाराणसी से ही मगध की राजधानी गिरिव्रज को क्यों गया था, मगध की राजधानी पर अधिकार करने को ही तो वह वहाँ गया था। इसी घटना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मगध के शिशुनाग क्यों इतनी शीघ्रता और सरलता से वत्स और अवंति के राजवंशों का सहयोग प्राप्त कर अधिक उन्नति कर सके।

बौद्ध ग्रंथों में प्रद्योत को महात्मा बुद्ध का समकालीन उल्लिखित करते हुए 'प्रद्योत-कुमार' कहा है। इसका अर्थ यही है कि महात्मा बुद्ध के जीवन-काल में प्रद्योत कुमार ही था, क्योंकि प्रद्योत के अभिषिक्त होने के लगभग डेढ़ दो वर्ष के अवांतर में ही उनका निर्वाण हो गया था। उस समय वत्स में उदयन राज्य करता था।

८—पालक—प्रद्योत की रानी अंगारवती से पालक और गोपालक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे तथा वासवदत्ता नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई थी। पालक प्रद्योत का उत्तराधिकारी हुआ। इसका राज्य-काल २४ वर्ष है। इसके शासन के अंतिम काल में अवंति में विद्रोह हुआ, जिसमें यह मारा गया और इसका भाई गोपालक गद्दी पर बैठा। जैन-वंशावलियों में इसका राज्याभिषेक अजातशत्रु के शासन के छठे वर्ष में लिखा मिलता है। यह उल्लेख विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि जैन और बौद्ध इतिहास के लेखों में उदयन का २४ वर्ष का राज्य-काल भूल से छोड़ दिया गया है।

'कथासरित्सागर' के अनुसार वत्सराज उदयन ने दिग्विजय कर अपने साले पालक के भाई गोपालक को विदेह या वैदेह का शासक बना दिया था और उस समय पालक अवंति में उदयन के प्रतिनिधि के रूप में शासन करता था।

९—दर्शक—यह शिशुनाग वंश का सातवाँ सम्राट् था। इसका राज्य-काल ३५ वर्ष है। यह अजातशत्रु का पुत्र था। बौद्ध और जैन इतिहास-लेखकों ने इसे और इसके राज्य-काल को भूल से न गिनकर इतिहास की शृंखला में विचित्र गड़बड़ी उत्पन्न कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी है। इसने अपने राज्य के चतुर्थ वर्ष में पाटलिपुत्र को मगध की स्थायी राजधानी का रूप दिया।

इसकी पुत्री पद्मावती थी और पुत्र सिंह वर्मा था। पुत्री का विवाह वत्सराज उदयन से हुआ था। 'कथासरित्सागर' के अनुसार उदयन को मगध का राज्य पद्मावती के विवाह के अवसर पर ही प्राप्त हुआ था। उस समय उदयन ने सिंह वर्मा को चेदि का शासक बना दिया था।

१०—गोपालक—अवंति के प्रद्योत वंश का यह तीसरा राजा है। राज्यक्रांति के अवसर पर जब पालक मारा गया तब यह विदेह से आकर यहाँ का राजा हुआ। पुराणों में इसका दूसरा नाम विशाखयूप भी लिखा है। इसका राज्य-काल ५० वर्ष है।

वत्सराज उदयन के साथ पालक और गोपालक की भगिनी वासवदत्ता के ब्याहे जाने का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसके साथ दर्शक की पुत्री तथा सिंह वर्मा की बहिन पद्मावती के विवाह का उल्लेख भी ऊपर हुआ है। अतः यह मानना उचित है कि उदयन का पिता परंतप (अथवा इसका नाम शतानीक, जय अथवा कुछ और रहा होगा) तथा प्रद्योत और दर्शक समकालीन थे। मगध के सिंहासन पर दर्शक के पश्चात् उदयन ही अभिषिक्त हुआ। उदयन के पीछे नंदिवर्धन वहाँ का राजा हुआ। इस प्रकार स्पष्ट है कि दो चार या दस पाँच वर्ष की अवधि में ही दर्शक और उदयन के शासन-काल में ही प्रद्योत और उसके दोनों पुत्रों का समय तथा अज और नंदिवर्धन के बीस वर्ष का राज्य-काल भी समाप्त हो जाना चाहिए। और यह समय ३५ + ३३ = ६८ वर्ष से अधिक नहीं हो सकता। किंतु पुराणों में इन पाँचों प्रद्योतों का समय १३८ वर्ष लिखा है। यह कैसे सम्भव है ? इसका समाधान यह है कि नंदिवर्धन ने उज्जयिनी का अपना २० वर्ष का राज्य-काल उसी समय समाप्त किया था जिस समय उदयन की मृत्यु हुई। इससे पूर्व उसका पिता अज या अजक (इसे कहीं कहीं सूर्यक भी लिखा है) २१ वर्ष राज्य कर चुका था। यही वत्सराज उदयन है। जान पड़ता है कि उज्जयिनी के विप्लव एवं पालक की हत्या में वत्सराज उदयन के मंत्रियों ने भी गुप्त रूप से भाग लिया होगा। और इस प्रकार वत्सराज उदयन अपने जीवन-काल में ही उज्जयन या पश्चिमी समुद्र-तट से मगध, बिहार और उत्कल देश या पूरबी समुद्र-तट तक के देश का सम्राट् बन सका। पालक की मृत्यु के पश्चात् गोपालक उज्जयन में नाम को ही राजा रहा। वहाँ उस समय वास्तविक सत्ता और अधिकार तो अज या उदयन और उसके पुत्र नंदिवर्धन का था। ऊपर वत्स, मगध और अवंति के राजवंशों के पारस्परिक संबंध का उल्लेख करते हुए इन तीनों को एक ही महान् वंश की शाखा कहा गया है। पुराणों ने इन दो शाखाओं को एक में मिलाकर इनके राजाओं के राज्य-काल के वर्षों को भी मिला दिया है। वस्तुतः प्रद्योत वंशी राजाओं का क्रम और उनके राज्य-काल के वर्ष यों समझने चाहिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रद्योत	२३	वर्ष
पालक	२४	,,
गोपालक	९	,,
अज	२१	,,
गोपालक	२१	,,
नंदिवर्धन	२०	,,
गोपालक	२०	,,
गोपालकुल	५०	,,
योग	९७	वर्ष

नंदिवर्धन और उसके पिता अज या उदयन के ४१ वर्षों को गोपालक के साथ और उससे अलग भी, इस प्रकार दो बार, गिन लेने के कारण पुराणों ने इसी ९७ वर्ष के समय को १३८ वर्ष समझ लिया।

अज या उदयन के संबंध में एक और बात भी जानने की है। प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता का ब्याह उदयन के साथ प्रद्योत की मृत्यु से २,४ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा, क्योंकि इसके पश्चात् ही दर्शक की पुत्री से उसका ब्याह हुआ था। यह तो स्पष्ट ही है कि वासवदत्ता के विवाह के पश्चात् प्रद्योत अधिक काल तक जीवित नहीं रहा। यदि उदयन का विवाह वासवदत्ता से १५ और २० वर्ष की वय के मध्यवर्ती किसी वर्ष में माना जाय तो मगध के सिंहासन पर अधिकार प्राप्त करने के समय उसकी वय ६० वर्ष के लगभग रही होगी, क्योंकि पद्मावती के विवाह के पश्चात् लगभग २५ या ३० वर्ष तक दर्शक का राज्य करना सिद्ध होता है।

११—अज या उदयन—यह वत्सराज़ उदयन के नाम से अधिक विख्यात है। शिशुनाग वंश में यह आठवाँ और प्रद्योत वंश में चौथा गिना गया है। इसका राज्य-काल ३३ वर्ष है। इसे उदायी, उदयाश्व और सूर्य या सूर्यक भी कहा गया है। इसके विवाहों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। 'कथासरित्सागर' में पद्मावती के विवाह के प्रसंग में कहा है कि पद्मावती का पाणि-पल्लव एवं मगध की भूमि इसे एक साथ प्राप्त हुई—

ततः स वेदिमारुह्य तस्या जग्राह यत्करम्।
तदेवारभ्य तां प्राप तस्य पृथिव्याः करग्रहे॥

सिंहासनासीन होनेपर इसने पाटलिपुत्र या कुसुमपुर को राजधानी बनाया और इस प्रकार उज्जयन की गति का केंद्र भी वही हो गया। 'बृहत्कथा' के अनुसार इसने दिग्विजय की थी, जिसमें इसके मित्र और संभवतः श्वशुर पुलिंदक ने शबर-सेना से इसकी सहायता की थी। वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त को परास्त कर इसने बंगाल पर चढ़ाई की और वहाँ जयस्तंभ स्थापित किया। दक्षिण को जाती बार इसने कलिंग, दक्षिणी घाटों के पहाड़ी राजा, कावेरी, चोल नरेश, मुरलपति, गोदावरी तट के देश,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य भारत और सिंधु तटवर्ती 'तुरुष्क तुरग व्रातों' को परास्त कर पारसीकपति का शिर काट डाला था। इसने हिमालय प्रदेश में हूणों को हराया और कामरूपपति ने इससे मित्रता स्थापित की। कदाचित् दिग्विजय का यह संपूर्ण वर्णन अतिरंजनापूर्ण है। वास्तविकता इसमें थोड़ी ही होगी। उदयन की मानसिक प्रवृत्तियाँ तो वाजिद अली शाह जैसी ही थीं, ऐसा विश्रुत है। इसकी सभा में गाने-बजाने, मदिरा, नाच-रंग, शिकारी-सवारी आदि की ही धूमधाम रहती थी। फिर भी उदयन का जो कुछ भी उत्कर्ष हुआ होगा वह मगध की राजसत्ता प्राप्त करने के पश्चात् ही और विशेषतः पुलिंदराज की विशेष सहायता से ही ऐसा हुआ होगा।

अवंति राजवंश में उदयन की गणना स्वतंत्र रूप से भी की गई है। इससे जान पड़ता है कि मालव प्रांत मगध के अधीन नाम मात्र को रहा होगा, कार्य रूप में उसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकृत की जाती थी। पुराणों में प्रद्योत वंश के पालक और गोपालक या विशाखयूप के शासन-काल को अज और नंदिवर्धन के साथ मिलाकर गिन लेने की बात ऊपर कही गई है। यह संभव है कि पालक और गोपालक के जीवन-काल में ये दोनों सम्राट् वस्तुतः अवंति के सत्ताधीश होकर अवंतिपति भी कहलाते और उस वंश की राज-सूची में भी गिने जाते रहे हों; और प्रत्यक्ष रूप में अपनी राजधानी—मगध—के हस्तगत होने तक कौशांबी में ही रहते रहे हों। यदि ऐसा हो तो भी इसमें संदेह नहीं कि इतिहास ने अज का महत्त्व उसके पुत्र नंदिवर्धन के कारण ही स्वीकार किया है। अवंति के राजाओं या शिशुनाक वंश के सम्राटों के देवकुल से प्राप्त हुई उनकी प्रतिमाओं में अज और नंदिवर्धन की प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं। उनमें अज की प्रतिमा पर उसे केवल 'क्षोणीधीश' लिखा है, किंतु नंदिवर्धन को 'सर्वक्षेत्रपति' कहा है। इसी लिये अज की दिग्विजय कल्पित जान पड़ती है।

१२—नंदिवर्धन—यह शिशुनाक वंश का नवाँ राजा और प्रद्योत-शाखा का पाचवाँ या अंतिम राजा था। इसका राज्य-काल अवंति में २० वर्ष और मगध में ४० वर्ष रहा। यह वत्सराज उदयन या अज का पुत्र था। इसके दूसरे नाम वर्तिनंदि, वटनंदि, वेटनंदि और केवल नंदि या नंद भी हैं। इसने अपने पिता अज की प्रतिमा देवकुल में स्थापित कराई। इसकी प्रतिमा पर इसे 'सर्वक्षेत्रपति' कहा गया है। इससे जान पड़ता है कि यह बड़ा बलवान् और विजयी सम्राट् रहा। कुछ विद्वान् इसे पुराणों का कालाशोक भी कहते हैं।

दर्शक के पुत्र के अभाव में अवंति से आकर यह मगध के सिंहासन पर बैठा हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। अभी ऊपर कह आए हैं कि इसके पिता अज या उदयन को मगध का राज्य और पद्मावती एक साथ प्राप्त हुई थी। इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि उदयन ने विवाह के थोड़े समय पश्चात् ही मगध पर अधिकार कर लिया हो और उस समय इसने अपने पुत्र नंदिवर्धन को मगध का शासक बना दिया हो। मगध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंदिवर्धन का शासन-काल ४० वर्ष लिखा है और अज या उदयन का २३ वर्ष। अज का शासन-काल अवंति में २१ वर्ष है, अर्थात् मगध का राज्य हस्तगत करने से २ वर्ष पीछे पालक की मृत्यु के पश्चात् एवं गोपाल के ९ वर्ष राज्य कर लेने पर उदयन को अवंति का राज्य प्राप्त हुआ था। उस समय वह स्वयं अवंति (या वत्स) में और उसका पुत्र नंदिवर्धन मगध में शासन करता रहा। इस परिस्थिति में मगध प्रांत कुछ काल के लिये अवंति का शासित प्रदेश बन गया था। अवंति में अज के २० या २१ वर्ष समाप्त होते होते मगध में उसके २३ वर्ष एवं नंदिवर्धन के २० वर्ष समाप्त होते थे। इसके पश्चात् अज की मृत्यु हो गई। नंदिवर्धन के आगे के २० वर्ष अवंति में अज के पश्चात् गिन लिए गए, जब गोपाल भी पूर्ववत् वहाँ का नाम मात्र का राजा था और मगध में उसके ४० वर्ष के शासन-काल का २१ वाँ वर्ष आरंभ हुआ। इसी बीच नंदिवर्धन ने राज-सत्ता का केंद्र उज्जयिनी से राजगिरि परिवर्तित कर दिया।

१३—महानंद्र—यह शिशुनाग वंश का दशम और अंतिम राजा था। इसका राज्य-काल ४३ वर्ष है। महानंद का दूसरा नाम महानंदि भी था। 'कथासरित्सागर' में इसे योगानंद भी कहा गया है। इसके समय से उज्जयन का राजकीय महत्त्व समाप्त हो गया, अर्थात् तब से उज्जयन में राजवंश का कोई क्रम नहीं चला और मगध से उज्जयन का शासन एक प्रांत के रूप में होना आरंभ हुआ। यही कारण है कि आगे वहाँ के प्रद्योत वंश की राजावली का क्रम भी चालू नहीं रखा गया है।

यह बहुत प्रतापी और प्रबल था। पाणिनी इसकी सभा के रत्न थे। प्रसिद्ध नंद तो वस्तुतः यही है, जिस के कारण नंद वंश ने इतिहास में इतनी ख्याति प्राप्त की है। यह बहुत लोभी सम्राट् भी कहा गया है। ईरान का प्रसिद्ध धनपति नरेश कारूँ, जिसका खजाना लोकोक्ति में प्रचलित है, इससे कुछ ही पूर्व हो चुका था। संभवतः उसी के अनुकरण पर इसने ९९ कोटि स्वर्ण मुद्राओं का संग्रह किया था। उड़ीसा पर आक्रमण कर इसने वहाँ की राजधानी तोषली से ऋषभदेव की स्वर्ण प्रतिमा और बृहत् द्रव्य-कोष का हरण किया। उत्कल या उद्र (प्राकृत ओड्र) विजय के पश्चात् मगधपति प्राचीपति भी कहे जाने लगे। प्रसिद्ध यूनानी यात्री और राजदूत मैगास्थनीज ने इस प्रांत को प्रैसिआई लिखा है, जो प्राची का ही दूसरा रूप है। महानंद ने नंद वंश की प्रतिष्ठा के लिये नंद-संवत् की स्थापना की थी। अलबेरूनी ने लिखा है कि नंद-संवत् विक्रम से ४०० वर्ष पहले से गिना जाता है। मौर्यों ने संभवतः इस संवत् का उपयोग राजकीय रूप से बंद कर दिया था, किंतु कलिंग आदि देशों में यह व्यवहृत रहा होगा।

इसने शूद्रा स्त्री से विवाह कर संतानोत्पत्ति की थी, किंतु चंद्रगुप्त शूद्रा से नहीं उत्पन्न हुआ था। कौटल्य के 'अर्थशास्त्र' द्वारा ऐसा लक्षित होता है कि चंद्रगुप्त मौर्य नंदों का वास्तविक प्रतिभू था। उक्त ग्रंथ में लिखा है कि उस आचार्य ने नंदराज की गई हुई भूमि का उद्धार किया था; अर्थात् इसके पुत्र महापद्मनंद और इसके सुमाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि आठ पुत्रों को मारकर राज्यलक्ष्मी चंद्रगुप्त में स्थापित करने को ही वह नंदराज की खोई हुई भूमि का उद्धार करना कहता है। उसके मूल शब्द ये हैं—

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नंदराजगता च भूः ।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥[१]

'कथासरित्सागर' में तो स्पष्ट ही चंद्रगुप्त को सत्यनंद का पुत्र कहा है। अस्तु, शूद्रा स्त्री के साथ संबंध होने के कारण राज्याधिकार में शूद्र-वर्ग का प्रभाव अवश्य ही बढ़ा होगा, विशेषतः शूद्रा महिषी के निकटतम संबंधियों का, जैसा कि प्रायः सर्वत्र देखा जाता है और इसकी प्रतिक्रिया के रूप में उच्च वंश की प्रतिष्ठा के अभिमानी तथा पुराने मौल कर्मचारियों तथा पुरोहित आदि धर्माध्यक्षों में असंतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था। जान पड़ता है कि ऐश्वर्य से मत्त महाराज ने ऐसे लोगों की कुछ भी परवाह न की। इसी लिये उसे उद्धत स्वभाव का कहा गया है।

महानंद के पश्चात् पुराणों में शिशुनाग वंश का अंत मानकर नवनंदों के वंश का उल्लेख किया गया है और उनका राज-काल भी १०० वर्ष कहा गया है। महानंद की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महापद्मनंद राजसिंहासन पर बैठा। वह भी अपने पिता के समान ही प्रबल था। विरोधी दल की उसके सामने भी कुछ नहीं चल पाती थी। जान पड़ता है कि महापद्मनंद के अंतिम शासन-काल में जब सिकंदर के आक्रमण के कारण संपूर्ण उत्तरी भारत और पंजाब तथा सीमाप्रांत आदि प्रदेशों में क्रांति-चक्र तीव्रता से चल रहा था तब पाटलीपुत्र के इन असंतुष्ट सूत्रधारों ने भी बाहर के राजपुरुष, सामंत, सैनिक, सचिव आदि से संपर्क स्थापित करने का अवसर प्राप्त किया और कौटल्य की सहायता से चंद्रगुप्त को नायक स्वीकार कर यहाँ भी क्रांति-चक्र प्रचालित किया। परिणामतः महापद्मनंद और उसके शूद्रागर्भज पुत्र हिरण्यगुप्त (या पुराणों के अनुसार सुमाली आदि आठ पुत्रों) का अंत करके इस नवनंद वंश की समाप्ति की। 'मुद्राराक्षस नाटक', 'कथासरित्सागर', 'बृहत्कथा' आदि प्राचीन ग्रंथों में ये सब बातें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं।

नंद वंश के गौरव के प्रमाण में एक प्राचीन लेख के अनुसार यह कहा जा सकता है कि कुंतल देश, जो वर्तमान मैसूर राज्य की उत्तरी सीमा से मिला हुआ था, उनके अधिकार में था। कादंबवंशी नरेशों ने भी अपने को नंदवंशी ही स्वीकार किया है। ये कोंकण के मौर्यों पर भी विजय कर चुके थे, ऐसा जान पड़ता है, और कदाचित् हमारा यह अनुमान ठीक ही है, कि चंद्रगुप्त की माता मौर्य राजकुमारी ने भी इसी कोंकण या कुंतल-विजय के पश्चात् किसी संनिकट समय में ही नंदों के अंतःपुर में प्रवेश किया होगा।

महापद्मनंद एवं उसके पुत्रों के १०० वर्ष के शासन-काल के विषय में भी यहाँ

१—अधिकरण, १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कहना आवश्यक है। नंद वंश वस्तुतः कोई स्वतंत्र वंश नहीं था, यह शिशुनाक वंश का ही एक अनुवंश था। इसे पुराणों की शैली के अनुसार शिशुनाक वंश में कहकर भी इसका राज्य-काल अलग गिन लिया गया है, जिससे इसके पृथक्त्व की भी रक्षा हो गई। महानंद के प्रताप की कथाएँ सुनकर ही तो सिकंदर की लड़ाकू सेना का साहस पंजाब से आगे बढ़ने का नहीं होता था, यह बात तत्कालीन यूनानी लेखकों के कथन से ही प्रमाणित होती है। महानंद की मृत्यु होने पर उसका पुत्र महापद्मनंद सिंहासन पर बैठा। यह भी बड़ा पराक्रमी था। सिकंदर के आक्रमण की बात सुनकर यह साहसी सम्राट् बीस सहस्र हाथी, दो लाख पदाति और असंख्य रथ और घोड़े लेकर उससे लड़ने के लिये आगे बढ़ा, किंतु सिकंदर और उसकी सेना ने इस समाचार को सुनकर इसे लड़ने का अवसर ही नहीं दिया। इतने प्रभावशाली राजवंश के राज्य-काल की गणना को अलग किए बिना भला पुराणकार किस प्रकार रह सकते थे, जब कि उनके ग्रंथों का एक प्रधान विषय "वंशानुवंश"-कीर्तन भी था! इसी लिये इस अनुवंश के १०० वर्ष लिखकर पुराणों ने आगे मौर्य राजाओं का उल्लेख करना आवश्यक समझा। 'मंजुश्रीकल्प' में इसकी वय ६६ वर्ष लिखी है।

१४–महापद्मनंद—शूद्रागर्भजात शिशुनाग वंश के नंद अनुवंश में जन्म लेनेवाले इस महाराज का उल्लेख पुराणों ने शुनक के महान् वंश में नहीं किया है। फिर भी पुराणों ने इसका महत्त्व—राजनीतिक महत्त्व—तो स्वीकार किया ही है। इसके पिता के समय से चले आनेवाले दोनों राजवंश विरोधी दल, अर्थात् पुरोहित, धर्माध्यक्ष आदि का वर्ग और राज-शक्ति को प्रधान वंश से शूद्रों के हाथ में जाते देखकर असंतुष्ट मुख्य राजवंश के लोग, तब तक ही शांत रहे जब तक युवा चंद्रगुप्त एवं आचार्य कौटल्य कार्य-क्षेत्र में नहीं आ सके थे।

पुराणों के लेखकों ने महापद्मनंद का शासन-काल पृथक् रूप से भी वर्णित किया है, तथा यह भी लिखा है कि नंदों का राज्य १०० वर्ष तक रहेगा और सुभाली आदि ८ नंद १२ वर्ष राज्य करेंगे—

महानन्दि सुतश्चापि शूद्रायाः कालसंवृतः।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तकृन्नृपः॥
ततः प्रभृतिः राजानो भविष्या शूद्रयोनयः।
एकराट् स महापद्मः एकच्छत्रो भविष्यति॥
अष्टाशीति तु वर्षाणि पृथिवीं पालयिष्यति।
तत्पश्चात्सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः॥
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात्।
उद्धरिष्यति तान्सर्वान् कौटल्यो वै द्विजर्षभः॥

"अष्टाशीति तु वर्षाणि" के स्थान पर "अष्टाविंशति वर्षाणि" पाठ भी कुछ विद्वानों ने स्वीकार किया है। पुराणों का यह कथन कुछ अधिक स्पष्ट नहीं है। महापद्मनंद को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारकर गद्दी पर बैठने के पश्चात् चंद्रगुप्त मौर्य ने सुमाली आदि को राज्य करने ही कहाँ दिया होगा ? फिर, 'कथासरित्सागर' में महापद्मनंद के पुत्र का नाम हिरण्यगुप्त लिखा है, जिसे चंद्रगुप्त ने कैद कर लिया था। वस्तुतः नंदों में नंदिवर्धन और महानंद का राज्य-काल ८३ वर्ष तक था, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। ये प्राचीन नंद थे। नव-नंदों में महापद्मनंद और उसका पुत्र हिरण्यगुप्त, अथवा केवल इसका पिता ही गिना जा सकता है, जिसने कुछ काल तक राज्य किया होगा। नवनंद शब्द का अर्थ ९ नंद लेना एवं नंद के पुत्रों की संख्या ८ गिनना केवल पुराणों के इसी लेख के आधार पर है कि सुमाली आदि ८ पुत्रों ने १२ वर्ष राज्य किया। किंतु यह कथन भ्रमपूर्ण जान पड़ता है। पुराणकथित महापद्मनंद का ८८ या २८ वर्ष का शासन-काल बहुत अधिक है। प्रजा में विद्रोह की उपस्थिति में इतने लंबे समय तक कोई भी राजा शांतिपूर्वक शासन नहीं चला सकता। सच बात तो यह है कि महापद्मनंद और उसके पुत्रों के १०० वर्ष के शासन की बात किसी प्रकार भी सिद्ध होती नहीं जान पड़ती और न उस पर सहसा विश्वास ही होता है। हमारे विचार से महापद्मनंद एवं उसके पुत्र हिरण्यगुप्त अथवा सुमाली आदि ८ पुत्रों का संयुक्त शासन १५ या १७ वर्ष से अधिक नहीं था। इस प्रकार नंदों के राज्य के लगभग १०० वर्ष भी गिने जा सकते हैं—

नंदिवर्धन	४० वर्ष
महानंदि	४३ वर्ष
महापद्मनंद हिरण्यगुप्त या सुमाली आदि	} १५ वर्ष
योग	९८

सही बात यही जान पड़ती है कि सिकंदर की चढ़ाई के समय महापद्मनंद ही मगध में राज्य करता था। चंद्रगुप्त मौर्य ने महापद्मनंद और उसके पुत्रादि को मार तुरत सिंहासन पर अधिकार कर अपना राज्याभिषेक करा लिया होगा। यह घटना ईसा से ३२४ वर्ष पूर्व और विक्रम-संवत् से २६८ वर्ष पूर्व की है। यह भी संभव है कि महापद्मनंद की मृत्यु के पश्चात् लगभग १२ वर्ष तक, या इससे कुछ कम, हिरण्यगुप्त आदि इधर उधर विद्रोह फैलाते घूमते रहे हों और उस काल को भी उक्त १०० वर्ष में गिन लिया गया हो। इस अनुमान में यदि कुछ सत्यांश है तो महापद्मनंद का राज्य-काल वही समझा जायगा जो विद्रोह-काल को १५ वर्ष में से कम करने पर शेष रहेगा। हिरण्यगुप्त या सुमाली आदि भी नंद थे, और वे भी अपने समय में अपने को महानंद कहते रहे होंगे। अतः यदि सिकंदर और उसके साथियों ने अपने लेखों द्वारा इसी हिरण्यगुप्त या सुमाली की ओर संकेत किया हो तो आश्चर्य नहीं। इस अनुमान से संगति अधिक सुविधापूर्वक बैठ जाती है। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश भाषा के कतिपय अन्य दिगंबर जैन ग्रंथ

श्री अगरचंद नाहटा

अपभ्रंश-साहित्य केवल हिंदी ही नहीं वरन बँगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, मगही, भोजपुरी, मैथिली यावत् सिंधी, पंजाबी और उड़िया साहित्य की भी संमिलित निधि है। अपभ्रंश के इन भाषाओं का मूल होने के कारण इनके क्रमिक विकास एवं शब्द-भांडार के अध्ययन के लिये इसका (अपभ्रंश का) अध्ययन अत्यावश्यक है। परवर्ती समग्र भाषा-साहित्य अपभ्रंश-साहित्य से प्रभावित है। संस्कृत-साहित्य के ऋण से भी इसका ऋण अधिक एवं मूल्यवान् प्रतीत होता है, अतः इस भाषा के साहित्य का सांगोपांग अध्ययन बहुत ही आवश्यक एवं समीचीन है।

इस साहित्य के सर्वाधिक, या यदि समग्र कह दें तो भी अत्युक्ति नहीं होगी, निर्माण का श्रेय जैनों को ही है, पर खेद है कि अभी तक जैन-भांडारों का बहुत ही कम अवलोकन हुआ है। अतः अभी तक इसके स्वल्प साहित्य का ही पता चल सका है। परंतु ज्यों ज्यों इनका निरीक्षण होता जा रहा है त्यों-त्यों नित्य नए ग्रंथ प्रकाश में आते जा रहे हैं। पुस्तकों का मूल्यांकन भी होने लगा है, इसलिये इस साहित्य का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

इस महत्त्वपूर्ण साहित्य के परिचय एवं प्रकाशन का प्रयास करनेवालों में डा० हीरालाल जी जैन का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के वर्ष ५० अंक ३–४ में इसका परिचय दिया है। अन्य प्रसिद्ध ग्रंथों का परिचय देते हुए अंत में वे स्वयं लिखते हैं कि "लेख तो मैं समाप्त करता हूँ किंतु अपभ्रंश-साहित्य का परिचय अभी समाप्त नहीं हो सका।" अतः आपके लेख में उल्लिखित ग्रंथों के अतिरिक्त जिन ग्रंथों का मुझे पता चला है उनका परिचय कई लेखों द्वारा कराने का विचार है; क्योंकि इस भाषा का साहित्य बहुत ही समृद्ध है। सैकड़ों छोटी बड़ी रचनाएँ मेरी जानकारी में आ चुकी हैं। इसका एक मात्र कारण जैन-ज्ञान-भांडारों से मेरा निकटतम एवं अत्यधिक संबंध है।[1]

डा० हीरालाल जी का परिचय दिगंबर भांडारों से विशेष है और मेरा श्वेतांबर भांडारों से। अतः मेरे लेख संभवतः आपके लेखों के पूरक स्वरूप हों। आपने अपने लेख में श्वेतांबर विद्वानों में से केवल तीन (हेमचंद्र, सोमप्रभ एवं हरिभद्र सूरि) का ही निर्देश किया है, अतः पचीसों अन्य अपभ्रंश-साहित्य-सेवी श्वेताबंर विद्वानों का परि-

---

१—पंद्रह हजार हस्तलेख तो लेखक के निजी संग्रहालय में ही विद्यमान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चय अभी अपेक्षित है। यहाँ केवल कतिपय नवीन ज्ञात दिगंबर जैन अपभ्रंश रचनाओं का परिचय देना ही अभीष्ट है।

यहाँ एक ऐतिहासिक सत्य का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है। वह यह कि अपभ्रंश का श्वेतांबर तथा दिगंबर-साहित्य एक दूसरे का पूरक है। दिगंबर-साहित्य में प्रबंध-काव्यों की अधिकता है और श्वेतांबर-साहित्य में लघु काव्यों एवं मुक्तक रचनाओं की अधिकता। दिगंबर-अपभ्रंश-साहित्य में आख्यायिकाएँ एवं कुछ औपदेशिक काव्य ही उपलब्ध हैं और श्वेतांबर-साहित्य विविधताओं का भांडार है। दिगंबर-साहित्य में बड़े बड़े ग्रंथ हैं। मगर इनकी संख्या कम हैं। उक्त दोनों प्रकार के साहित्यों की शैलियों में मौलिकता है, और दोनों प्रकार के साहित्यों में परवर्ती साहित्य को प्रभावित करने की अद्भुत एवं असाधारण क्षमता है। समग्र अपभ्रंश-साहित्य के आलोक में परवर्ती रचनाओं पर विचार करने पर ही उसके चमत्कार के अनोखे दर्शन होंगे।

दिगंबर जैन ग्रंथों की एक सूची कई वर्षों पूर्व श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ने प्रकाशित की थी, पर उनकी पूर्ण एवं व्यवस्थित सूची अभी तक नहीं दिखाई पड़ी। इसके लिये मैंने एक लेख 'अनेकांत' के वर्ष ४, अंक ५ में प्रकाशित कर दिगंबर विद्वानों का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट किया था। 'अनेकांत' के संपादक श्री जुगुलकिशोर मुख्तार का ध्यान इस ओर तो पहले से ही था, मेरे लेख ने एक नई प्रेरणा की और उसी अंक से दिल्ली आदि के कतिपय दिगंबर ग्रंथ-भांडारों की सूची प्रकाशित होने लगी और श्री परमानंद शास्त्री को उक्त भांडारों के अवलोकन के लिये प्रेरित किया गया, फलतः आमेर के महेंद्रकीर्ति भांडार में ही २५ अज्ञात अपभ्रंश काव्यों की उपलब्धि हुई, अन्य भांडारों के भी कतिपय नवीन अपभ्रंश-ग्रंथ मिले। कई ग्रंथों पर परिचयात्मक स्वतंत्र लेख भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस लेख में मुख्यतः उन्हीं ग्रंथों का परिचय दूँगा जिनकी जानकारी उक्त 'अनेकांत' पत्र से प्राप्त हुई है, एवं जिनका निर्देश डा० हीरालाल जी के लेख में नहीं आ पाया है।

नवीन काव्यों का परिचय देने के पूर्व डा० हीरालाल जी के लेख के संबंध में नवीन ज्ञातव्य बातें लिख देना आवश्यक समझता हूँ। अतः आपके लेख में लिखित कवियों एवं कृतियों के संबंध में संक्षेप में नवीन जानकारी नीचे दी जा रही है।

१—अब्दुल रहमानरचित 'संदेश रासक' सिंधी जैन-ग्रंथ-माला के ग्रंथांक २२ में श्री मुनि जिन विजय जी एवं श्री हरिवल्लभ भायाणी द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हो चुका है। पं० बेचनदास जी ने इसके संबंध में 'भारतीय विद्या' के वर्ष ३ में एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया है।

२—वीररचित 'जंबूस्वामी चरिउ' का रचना-काल सं० १०७६, माघ शुक्ल १० है। इस काव्य एवं कवि के संबंध में पं० परमानंद शास्त्री का 'अपभ्रंश भाषा का जंबूसामि चरित और महाकवि वीर' नामक लेख 'प्रेमी-अभिनंदन-ग्रंथ' में प्रकाशित हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—जयमित्र हल्लरचित 'वड्ढमाण कव्वु' के संबंध में पं० दीपचंद पंड्या का 'अपभ्रंश भाषा के दो ग्रंथ' नामक लेख द्रष्टव्य है, जो 'अनेकांत' के वर्ष ४ में प्रकाशित है।

४—यशकीर्तिरचित 'हरिवंश पुराण' का रचना-काल सं० १५२० बतलाया गया है। पं० परमानंद जी के लेखानुसार सं० १५०० होना चाहिए। इनके द्वारा रचित 'चंद्रप्रभ चरिउ' का उल्लेख किया गया है। पं० परमानंद जी ने इसी नामवाले, पर इनसे भिन्न किसी यशकीर्ति द्वारा रचित होने की संभावना की है।[1]

५—नयनंदि के 'सुंदरण चरिउ' का परिचय श्री रामसिंह तोमर ने 'विश्व-भारती', खंड ४, अंक ४ में प्रकाशित किया है।

६—महाकवि स्वयंभू की कविता के उदाहरण श्री राहुल सांकृत्यायन ने 'हिंदी काव्य-धारा' में प्रकाशित किए हैं। इन्होंने कवि को संसार के प्रधान कवियों में स्थान दिया है।

पूर्वज्ञात ग्रंथकारों के उपलब्ध नवीन ग्रंथ

१—'कथा कोष' के रचयिता श्रीचंद्ररचित 'रत्नकरंड श्रावकाचार' की और उपलब्धि हुई है। यह स्वामी समंतभद्र की सुप्रसिद्ध 'रत्नकरंड' नामक गंभीर कृति का विस्तृत व्याख्यान मात्र है। कवि ने इस आचार-ग्रंथ की रचना करते हुए इसे २१ संधियों में विभाजित किया है। इसकी आनुमानिक छंद-संख्या ४४२८ बतलाई गई है। छंद पद्धडिया है। ग्रंथ में उदाहरण स्वरूप प्रसंगगत व्रतोपासक व्यक्तियों के कथानक भी दिए गए हैं। विषय स्पष्ट करने के लिये कुछ प्राचीन पद्य भी जहाँ तहाँ उद्धृत किए गए हैं।

ग्रंथ में हरिनंदि, मुनींद्र, समंतभद्र, अकलंक कुलभूषण, पादपूज्य (पूज्यपाद) विद्यानंदि, अनंतवीर्य, वरसेण, महामति वीरसेन, जिनसेन, विहगसेन, गुणभद्र, सोम-राज, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदंत, श्रीहर्ष और कालिदास नामक विद्वानों का उल्लेख किया गया है।

ग्रंथ की रचना विक्रम-संवत् ११२३ में कर्ण नरेंद्र के राज्य-काल में बालपुर या श्रीबालपुर में पूर्ण हुई थी[2]।

२—'सुकमाल चरित्र' के कर्त्ता श्रीधररचित 'वड्ढमाण कव्वुकी प्रति दूणी' के भांडार में है[3]। इसमें कवि द्वारा रचित 'चंद्रप्रभ चरित' और 'शांतिनाथ चरित' का उल्लेख भी है, जो अनुपलब्ध हैं। यह ग्रंथ कवि ने साधु नेमिचंद्र की प्रेरणा से रचा है, जिनका वंश-परिचय भी ग्रंथ में पाया जाता है।

१—जैन-सिद्धांत-भास्कर, वर्ष ११, अंक २।

२—अनेकांत, वर्ष ७, पृष्ठ १०४।

३—वही, वर्ष ४, पृष्ठ ५२०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—'अणुवचरयण पईउ' के कर्ता लक्ष्मण कवि का 'नेमिनाथ चरित्र' जयपुर के भांडार में उपलब्ध हुआ है[1]।

४—सुप्रसिद्ध कवि रइधू के २३ ग्रंथों का उल्लेख करते हुए डा० हीरालाल जी ने ५ ग्रंथों के ही नाम दिए हैं। इनके शेष १८ ग्रंथ ये हैं—

(१) आदि पुराण (महा पुराण), (२) यशोधर चरित्र, (३) व्रतसार, (४) जीवंधर चरित्र, (५) हरिवंश पुराण, (६) राम पुराण, (७) महावीर चरित्र, (८) करकंडु चरित्र, (९) जिणंधर चरित्र, (१०) उपदेश रत्नमाला, (११) आत्म-संबोधन, (१२) पुण्याश्रव कथा,[2] (१३) समत्तगुण निहान, (१४) सम्यग्गुणारोहण, (१५) सम्यक्त्व कौमुदी, (१६) सिद्धांतार्थसार, (१७) सुकौशल चरित्र, (१८) अणथमी कथा[3]।

इनमें से 'सुकौशल चरित्र' (सं० १४९६) के संबंध में श्री रामजी उपाध्याय का 'सुकौशल चरित्र' नामक लेख 'जैन-सिद्धांत-भास्कर', भाग १०, किरण २ में प्रकाशित हो चुका है। पं० परमानंद जी ने जिन २३ ग्रंथों का उल्लेख किया है उनमें से 'सिद्धचक्र चरित्र' और 'श्रीपाल चरित्र' तो एक ही हैं। अतः उसके स्थान पर मैंने डा० हीरालाल जी द्वारा सूचित 'मेघेश्वर चरित्र' को मान लिया है। मुझे उपर्युक्त १८ ग्रंथों के नामों में भी २-३ (संख्या १३-१४) नाम भ्रांतिपूर्ण से प्रतीत होते हैं। अतः उनके स्थान में निम्न-लिखित नव्य ज्ञात ग्रंथों की पूर्ति की जा सकती है—

(१) पद्म पुराण, (२) धन्यकुमार चरित्र[4] (आमेर महेंद्रकीर्ति भांडार)

५—'षटकर्मोपदेश' के रचयिता अमरकीर्तिरचित 'पुरंदर विहाण कहा' का उल्लेख पं० परमानंद जी ने अपने 'अपभ्रंश भाषा का जैन कथा-साहित्य' नामक लेख में किया है। इसकी रचना भी कवि ने अपने कनिष्ठ बंधु अंबाप्रसाद की प्रेरणा से की है। प्रो० हीरालाल जी ने कवि के अन्य तीन अनुपलब्ध ग्रंथों के नाम दिए हैं, जिनमें से 'जसहर चरिउ' का निर्देश न करते हुए पं० परमानंद जी ने 'टिप्पणधर्म चरित', 'सुभा-षित रत्ननिधि', 'धर्मोपदेश चूड़ामणि' और 'भूरण पईउ' के नाम सूचित किए हैं।[5]

६—'हरिवंश पुराण' के कर्ता यशकीर्तिरचित 'पांडव पुराण' (सं० १४९७ या १५४७) योगिनीपुर (दिल्ली) के निवासी अग्रवाल वील्हा के पुत्र हेमराज की प्रेरणा से रचा हुआ प्राप्त हुआ है। इनकी दो अन्य रचनाओं 'रविवड (आदित्यवार) कहा'

१—वही, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४।

२—इसकी रचना साहु नेमिदास की प्रेरणा से हुई है। ग्रंथ की प्रशस्ति में नेमिदास के परिवार का विस्तृत परिचय दिया गया है।—वही, वर्ष ८, किरण ६,७।

३—इस ग्रंथ में रात्रि-भोजन के दोषों का बड़ा सुंदर विचार किया गया है। —वही।

४—वही, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४। ५—वही, वर्ष ८, किरण ६,७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं 'जिनरात्रि कथा' की भी प्राप्ति हुई है[1]।

७—'बड्ढमाण कव्वु' के रचयिता जयमित्र हल्ल के एक और ग्रंथ 'मल्लिनाथ कव्वु' की प्रति आमेर के भांडार में उपलब्ध है।[2]

८—'करकंडु चरित्र' के कर्ता कवि कनकामररचित 'एकादश प्रतिमा विवरण' का उल्लेख 'अनेकांत', वर्ष ४, पृष्ठ ४९५ में पाया जाता है।

नवीन ज्ञात ग्रंथ एवं ग्रंथकार

१—निवडिदेव के शिष्य विमलसेन के शिष्य देवसेन ने ममल्लपुरी में राक्षस संवत्सर के श्रावण शुक्ल १४, बुधवार को 'सुलोचना चरित्र' की रचना की। इसमें प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ के पुत्र चक्रवर्ती भरत के सेनापति जयकुमार की पत्नी सुलोचना का चरित्र वर्णित है। कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों में कालिदास, हर्ष, बाण, मयूर, हलिय, गोविंद, चंद्रमुख, स्वयंभू एवं पुष्पदंत का स्मरण किया है। पं० परमानंद जी ने कवि का समय १२ वीं-१३ वीं शती माना है।[3]

२—कवि माणिक्यराज के 'नागकुमार चरित्र' की प्रति आमेर के महेंद्रकीर्ति भांडार में उपलब्ध हुई है। इसकी रचना सं० १५७९ के फाल्गुन शुक्ल ९ को हुई थी। कवि ने इसे चौधरी जगती के पुत्र टोडरमल्ल को समर्पित किया है। ग्रंथ में ३३०० श्लोक हैं।[4]

३—सं० १४५४ के वैशाख शुक्ल १३ को चंदवाड के जैसवाल वासाधर की प्रेरणा से कवि धनपाल ने 'बाहुबलि चरित्र' की रचना की। प्रस्तुत ग्रंथ १८ संधियों में है। कवि धनपाल गुजरातवर्ती पाल्हणपुर के निवासी राजश्रेष्ठी पोरवाड जातीय भोवइ के पुत्र सुहडप्रभ के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सुहडादेवी और भाइयों का नाम संतोष और हरुराज था। कवि ने वासाधर के वंश का भी अच्छा परिचय दिया है। कवि धनपाल के गुरु प्रभाचंद्र थे, जिनकी आज्ञा से ये सौरिपुर यात्रार्थ आए। रास्ते में समृद्ध नगर चंदवाड देखा एवं वहाँ के वासाधर के लिये ग्रंथ बनाया।[5]

४—सं० १२७५ की पौष कृष्णा षष्ठी, रविवार को त्रिभुवनगिरि के जैसवाल साहुल के पुत्र लक्ष्मण कवि ने 'जिनदत्त चरित्र' की रचना की। त्रिभुवनगिरि के विनष्ट होने पर कवि विलरामपुर आए और यहाँ के श्रेष्ठी पुरवाड़ वंशीय विल्हण के पौत्र एवं जिनधर के पुत्र श्रीधर की प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रंथ रचा गया। लाखू या लक्ष्मण के द्वारा रचित 'चंदनषष्ठी कथा' भी उपलब्ध है। पर वे इनसे भिन्न हैं या अभिन्न, इसका निर्णय प्रमाणाभाव से नहीं किया जा सकता।[6]

१—वही। २—वही, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४। ३—वही वर्ष ७, पृष्ठ १५६-१६४।
४—जैन-सिद्धांत-भास्कर, वर्ष ११, अंक १, पृष्ठ ३९।
५—वही, वर्ष १३, अंक २, एवं अनेकांत वर्ष ७, पृष्ठ ८३।
६—अनेकांत वर्ष ८, अंक ६। ७, पृष्ठ २७५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—'चूनडी' के रचयिता विनयचंद्र के गुरु बालचंद्र (जो उदयचंद्र के शिष्य थे) द्वारा रचित 'निदुदुहसप्तमी कहा' एवं 'नरयउतारी कहा' उपलब्ध है।[१]

६—माथुर संघीय भट्टारक मलयकीर्ति के शिष्य भ० गुणभद्र (जो गोपाचल के पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए थे) ने बहुत सी व्रतकथाओं का निर्माण किया, जिनमें से सं० १६०२ में लिखित १५ कथाओं का गुटका दिल्ली के पंचायती मंदिर में उपलब्ध है। इन कथाओं के नाम ये हैं—

(१) अणंतवय कहा, (२) रुवण (रोहिणी) बाइसि विहाण कहा, (३) पक्खपइ कहा, (४) णह (नभ) पंचमी कहा, (५) चंदायणवय कहा, (६) चंदणछट्ठी कथा, (७) णरयउतारी दुद्धारस कहा, (८) णिदहसत्तमी कहा, (९) मउडसप्तमी कहा, (१०) पुप्फंजलि।वय कहा, (११) रयणत्रय विहाण कहा, (१२) दहलक्खण वय कहा, (१३) लद्धिवय विहाण कहा, (१४) सोलह कारण वय विहि, (१५) सुयंधदसमी कहा।

इनमें से संख्या १, १०, १२ की कथाएँ ग्वालियर के जैसवाल वंशीय चौधरी लक्ष्मणसिंह के पुत्र पं० भीमसेन के अनुरोध से तथा संख्या २, १३ वाली कथाएँ वहीं के संघपति साहु उद्धरण के जिन मंदिर में साहु मातंगदेव के पुत्र देवदास की प्रेरणा से रचित हैं। इसी प्रकार ७ वीं कथा साहु वीघा के पुत्र सहजपाल के लिये रची गई है। भ० गुणभद्र का समय १६ वीं शती का पूर्वार्द्ध है।[२]

७—अपभ्रंश भाषा का सबसे परवर्ती ग्रंथ दिल्ली के भ० महिंद के शिष्य भगवतीदासरचित 'मृगांकलेखा चरित्र' है, जिसकी रचना हिसार में सं० १७०० के अगहन सुदी ५, सोमवार को वर्धमान जिनालय में हुई है।[३]

८—अब अवशिष्ट अपभ्रंश ग्रंथों की सूची[४] दी जा रही है, जिनके संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी।

ग्रंथ	कर्त्ता	समय
(१) परमेष्ठीप्रकाशसार	श्रुतकीर्ति	सं० १५५३
(२) प्रद्युम्न चरित्र	बुधरल्हण	
(३) श्रीपाल चरित्र	नरयसेन	
(४) हरिवंश पुराण	श्रुतकीर्ति	सं० १५५२
(५) श्रावकाचार	लक्ष्मीचंद्र	
(६) हरिषेण चरित्र		
(७) दोहडा अनुपेक्षा	लक्ष्मीसेन	
(८) आत्मसंशोध काव्य	सिंहनंदि	

१—वही। २—वही। ३—वही, वर्ष ७, पृष्ठ ५५ एवं जैन-सिद्धांत-भास्कर, वर्ष ११, अंक १। ४—वही, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) बारह अणुपेक्खा — जल्हिग
(१०) ,, — ईसर
(११) ,, — लक्ष्मीचंद्र
(१२) योगी चर्या
(१३) सहातत्त्व गीत
(१४) मुक्तावलि रासा — ब्र० जीवंधर
(१५) अवधू अनुपेत्ता — अवधू
(१६) आराधनासार ज्ञानपीड की पाथडी
(१७) बर्धमान काव्य — (जयपुर भांडार)
(१८) श्रेणिक चरित्र — सं० १६५५, जयपुर भांडार
(१९) सुकमाल चरित्र — भ० गुणभद्र, शिष्य पुष्पदंत
(२०) पिंगल — राजमल्ल (कुछ अपभ्रंश कुछ हिंदी में रचित)

९—दिगंबर व्रतकथा-वाङ्मय बहुत विशाल है। संस्कृत एवं हिंदी भाषा में सैकड़ों ग्रंथ इसके संबंध में उपलब्ध हैं।[1] पर इसका प्रारंभ अपभ्रंश से होता है और पचास के लगभग अप्रभंश व्रतकथाएँ भी मिलती हैं। जिनमें से कई कथाओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अवशिष्ट ज्ञात व्रतकथाएँ निम्नोक्त हैं—

(१) अणथमी कथा — अग्रवाल हरिश्चंद्र (१६ कडवकों में)—(रात्रि-भोजन के दोषों पर विचार)
(२) सोक्खवई विहाण कहा — विमलकीर्ति
(३) सुयंधदसमी कहा — देवदत्त
(४) रविवड कहा — नेमिचंद्र (माथुर संघ)
(५) अणंतवय कहा — ,,
(६) ,, — निनमिक
(७) मुक्तावलि विहाण — ,,
(८) पुरंदर विहाण कहा — ,,
(९) सोलह कारण कहा — अभ्रु

(१०) चंदनषष्ठी विधान, (११) मुक्तावलि कथा, (१२) जिनरात्रि विधान, (१३) सुगंधदसमी, (१४) चौदह गुणगण। इसी प्रकार अज्ञात कर्ताओं की कई अन्य कथाएँ भी उपलब्ध हैं, पर वे इनसे भिन्न हैं या नहीं, इसका निर्णय पाठ के मिलान किए बिना नहीं किया जा सकता।

१—जैन-सिद्धांत-भास्कर, वर्ष ११, अंक १ में प्रकाशित मेरा 'दिगंबर जैन-व्रतकथाएँ' नामक लेख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आलम' की कृतियाँ

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'खोज' में 'आलम' कवि के निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख है—

[१] आलम केलि (१९०३–३३)
[२] आलम कवि की कविता (१९३३–९ बी)
[३] आलम के कवित्त (१९२३–९ सी)
[४] कवित्त संग्रह (१९४१)
[५] संग्रह (१९२३–९ डी)
[६] छप्पय (१९२३–९ स)
[७] सुदामाचरित (१९३५–४, १९४३)
[८] श्यामसनेही (१९३२–६)
[९] माधवानलकामकंदला (१९०४–९)

इनमें संख्या १ से ५ तक के ग्रंथ एक ही हैं। 'आलमकेलि' में कई खंड हैं। उनके स्फुट अंश पृथक् होकर इन नामों से व्यक्त हुए हैं—कहीं ग्रंथ का नाम न मिलने से, कहीं पुष्पिका में 'आलम के कवित्त' नाम होने से। 'आलमकेलि' का और कोई नाम न मिलने से काँकरौली के पुस्तकाध्यक्ष ने उसका एक नया नाम 'चतुःशती' गढ़ लिया है, क्योंकि 'आलमकेलि' में कुल चार सौ छंद हैं। कहीं संख्या कम भी मिलती है। जैसे, मुद्रित 'आलमकेलि' में ३९७ छंद हैं। इसका कारण यही है कि ३ छंद उसमें नहीं हैं। एक प्रति में अंत की संख्या ४०२ दी गई है। पर उसमें दो छंद दो दो बार लिखे गए हैं। 'छप्पय' नाम की कोई पोथी नहीं है, १४ छप्पय एक साथ 'आलम' के कहीं मिले हैं, उन्हें पृथक् नाम दे दिया गया है, इस प्रकार तो 'आलम' के सैकड़ों कवित्त-सवैये संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध हैं। पर पृथक् ग्रंथ रूप में उनका उल्लेख नहीं हो सकता। अतः यह भी स्फुट रचना ही है, ग्रंथ नहीं। 'सुदामाचरित' में श्रीकृष्ण से भेंट करने के लिये सुदामा के द्वारका जाने और दारिद्र्य दूर होने की कथा वर्णित है। यह पोथी लावनी या ककुभ छंद में है। भाषा रेखता (खड़ी बोली) है। 'श्यामसनेही' में रुक्मिणी के ब्याह का वर्णन है। यह खंडकाव्य है; दोहे, चौपाइयों में प्रणीत हुआ है। 'माधवानल-कामकंदला' प्रेम-काव्य है। इसमें दोहे, सोरठे, चौपाइयों का विधान है। इनमें अतिरिक्त 'व्रजभारती' (१,८ पृष्ठ २०) में 'अक्षरमालिका' का उल्लेख है, जिसमें 'आलम' के कवित्त, सवैये बारहखड़ी के अनुक्रम से रखे गए हैं। उसमें 'आलमकेलि' के ही छंद हैं। अतः 'आलमकेलि' के विचार में वह भी गतार्थ है। इस प्रकार 'आलम' के निम्न-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखित ग्रंथ विचार करने को रह जाते हैं—'माधवानलकामकंदला', 'श्यामसनेही' 'सुदामाचरित' और 'आलमकेलि'। इनमें से 'आलमकेलि' मुक्तक रचनाओं का संग्रह है। शेष तीन प्रबंधकाव्य हैं। 'माधवानलकामकंदला' और 'श्यामसनेही' दोनों पुस्तकें एक ही ढर्रे पर लिखी गई हैं। 'सुदामाचरित' का ढर्रा दूसरे प्रकार का है। इन तीनों में सबसे बड़ी रचना 'माधवानलकामकंदला' है।

माधवानलकामकंदला

इस प्रबंधकाव्य की दो प्रकार की प्रतियाँ मिलती हैं। एक वे जिनमें पाँच अर्धालियों के बाद नियम से एक दोहा या सोरठा है। दूसरी वे जिनमें पाँच अर्धालियों के बाद एक सोरठा और एक दोहा भी है। दूसरे प्रकार की प्रतियों में कुछ वर्णनात्मक अंश बढ़े हुए हैं। यही नहीं, कथा-भाग भी कुछ अधिक है। दोनों प्रकार की प्रतियों की वर्ण्य वस्तु का अंतर निर्दिष्ट करने के लिये स्थूल रूप से घटनाओं का विवरण सामने रखना आवश्यक है। पहले प्रकार की प्रतियों में कथा-भाग इस प्रकार है—पुष्पावती नाम्नी नगरी में जिस समय गोपीचंद नामक राजा राज कर रहा था उस समय माधवानल नाम का योगाभ्यासी ब्राह्मण भी वहाँ रहता था, जो राजा को देव-पूजा की तुलसी दिया करता था। वह अनेक शास्त्रों में पारंगत था और वीणा बजाने में प्रवीण। उसके वीणा-वादन से नारियाँ मूर्छित हो जाती थीं। किसी दिन कोई गृहिणी भोजन का थाल लिए जा रही थी, माधव की वीणा बजी और उसकी स्वर-लहरी में मग्न हो जाने से उसके हाथ से थाल गिर पड़ा, इस पर उसका पति उसपर अप्रसन्न हो गया। थाल गिरने का कारण पूछे जाने पर उसने सच बात कह दी। वह गृहस्थ राज-दरबार में गया और उसने राजा से कहा कि आप इस ब्राह्मण को नगर से निर्वासित कर दीजिए अन्यथा हम लोग नगर त्याग देंगे। राजा ने इस पर माधवानल को बुलवा भेजा। उसके वीणा-वादन की परीक्षा ली। राजा के रनिवास की दासियों पर वही मोहक प्रभाव पड़ा। यह सोचकर कि प्रजा के नगर से चले जाने पर तो नगर ही उजड़ जायगा उसने माधवानल को तीन पान भिजवाकर यह कहलाया कि मेरे नगर से तुम निर्वासित हो। माधव वहाँ से चल पड़ा और कामावती नगरी पहुँचा। वहाँ उसने किसी दिन सुना कि कामकंदला नाम की वेश्या का गायन-वादन राजप्रासाद में हो रहा है। वह भी उसे देखने के विचार से चला। पर दरबार में उसे द्वारपाल ने नहीं जाने दिया। माधव ने द्वारपाल को बतलाया कि राजसभा में सभी सभासद अनाड़ी हैं। वेश्या नाचती है, पर उसका ताल बिगड़ता है, क्योंकि बारहो तबला बजानेवालों में से एक के हाथ में चार ही उँगलियाँ हैं। द्वारपाल ने यह अचरजभरी वार्ता राजा को जा सुनाई। राजा कामसेन ने तबलचियों को बुलवाकर इसकी जाँच की, तो पता चला कि सचमुच एक तबलची के अँगूठा ही नहीं है, मोम का अँगूठा लगा हुआ है। आश्चर्यचकित हो उसने ब्राह्मण को बुला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजा और उसका आदर-सत्कार किया; मुकुट, कुंडल, मोती की माला और द्रव्य का उपहार दिया।। कामकंदला ने ऐसे गुणी को दिखाने के लिये विविध प्रकार की राग-रागिनियों में गान गाया। जिस समय वह गीत गाने में मग्न थी उस समय उसके अंग में चर्चित अंगराज की सुगंध से आकृष्ट होकर कहीं से कोई भौंरा उड़ता हुआ आया और उसके स्तन पर जा बैठा। संगीत भंग न हो, इस विचार से कामकंदला ने शरीर भर से वायु को केंद्रीभूत कर स्तन के रोम-कूपों से उसका ऐसा वेग और दबाव किया कि भौंरा उड़ गया। गणिका के हाव-भाव में ही अन्य लोग डूबे थे। केवल माधवानल ने इसे जान पाया। नर्तकी के इस कौशल पर मुग्ध होकर उसने राजा द्वारा लब्ध सारा उपायन उसे भेंट कर दिया। ब्राह्मण की धृष्टता पर कुपित होकर राजा ने उसे देसनिकाले का दंड दिया। पर वेश्या उसके रूप और गुण पर मुग्ध हो चुकी थी, माधव भी उसपर मोहित हो गया था। वेश्या ने उसे अपने यहाँ बुलवाया। परोक्ष रूप में उसने उसे अपने यहाँ रखा, दोनों में प्रेम हो गया। पर माधव ने राजकोप के भय से इस प्रकार गुप्त रीति से उस नगर में वास करना उचित नहीं समझा। अतः वह वहाँ से अन्यत्र चला गया। कामकंदला उसके विरह में व्याकुल रहने लगी।

जिस प्रकार कामकंदला माधवानल के विरह में संतप्त हो रही थी उसी प्रकार कामकंदला के विरह में माधवानल भी। बहुत दिनों तक वह बन बन भटकता रहा। अंत में उसने सोचा कि किसी परोपकारी की सहायता प्राप्त कर अपना संताप निवारण करना चाहिए। यह विचारकर वह विक्रम नरेश की राजधानी उज्जयिनी पहुँचा, वहाँ भी कुछ दिनों तक इधर उधर दिन काटते काटते वह किसी दिन शिवमंदिर में गया। यहाँ राजा नित्य दर्शन के लिये आया करता था। उस मंदिर की भित्ति पर उसने इस आशय का दोहा लिख दिया—

कहा करौं कित जाउँ हौं राजा राम न आहि।
सिय-वियोग संताप बस, राघौ जानत ताहि॥

विक्रम ने दोहा पढ़ा, तो उसके वियोग के वारण के लिये डुग्गी पिटवाई कि नगर में कोई वियोगी ब्राह्मण आया है, जो उसका अनुसंधान कर के मेरे समक्ष उपस्थित करेगा वह पुरस्कृत होगा। राजा ने वियोगी का पता लगने तक के लिये अन्न-जल भी त्याग दिया था। राजा की अति चतुर दासी ज्ञानवती ने वीणा बजाते और विरह-गीत गाते माधव को देखा, तो अनुमित कर लिया कि अभीष्ट व्यक्ति यही है। वह माधव को सांत्वना देकर राजसभा में ले गई। विक्रम ने उसका आदर-सत्कार किया और कुशल-प्रश्न पूछा। विरह-विपत्ति की कथा से अवगत होकर उसने माधव को समझाया कि इतने विद्याविशिष्ट ब्राह्मण होकर आप गणिका के प्रणय में क्यों पड़े। भला वेश्या भी किसी प्रणयी के साथ स्नेह-निर्वाह करती है। आप धन, राज्य आदि जो चाहें ले सकते हैं, वेश्या-प्रेम का परित्याग कीजिए। इस पर माधव ने प्रेम की एकनिष्ठता और उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समक्ष अर्थ की तुच्छता का प्रतिपादन किया। अंत में उससे कामकंदला को मिलाने के लिये विक्रम प्रतिश्रुत हुआ। फलतः उसने कामावती पर अभियान की व्यवस्था कर के सेनासहित प्रस्थान किया। जब नगर दस कोस रह गया तो राजा ने कामकंदला के प्रेम की परीक्षा लेने का विचार किया। वह वेश बदलकर नगर में प्रविष्ट हुआ और कामकंदला के यहाँ पहुँचा। दूतियों ने भद्र पुरुष के आगमन की सूचना दी। राजा कामकंदला के निकट पहुँचा, इसने उसे उदास देखकर उससे प्रश्न किया। कि मैंने वेश्या की ऐसी उदासीनता नहीं देखी, मैं तेरे रूप, गुण की प्रशंसा सुनकर तेरे पास आया हूँ और तू इस प्रकार मुझसे क्यों उदासीन है। तू जो द्रव्य चाहे, तुझे दिया जायगा। कामकंदला ने माधव ब्राह्मण के प्रेम की चर्चा की और प्रेम की एकनिष्ठता का बखान किया। राजा ने कहा कि हाँ, माधव वैरागी को मैं भी जानता हूँ, वह उज्जयिनी में वीणा बजाते हुए चक्कर काटा करता था। पर वह तो विरह में व्याकुल होकर कभी का मर चुका। इसे सुनते ही कामकंदला ने प्राण-विसर्जन कर दिया। राजा नारी-हत्या के पातक से दग्धचित्त हो पड़ाव पर लौटा और माधव से समस्त वृत्तांत कह सुनाया। कामकंदला के प्राण-त्याग का समाचार पाते ही उसने भी प्राण-परित्याग कर दिया। सारी सेना में हाहाकार मच गया कि जिस ब्राह्मण के निमित्त सारा सैन्य-संभार हुआ वही चल बसा। राजा ने भी दो दो हत्याओं के अघ से व्यथित होकर नदी-तट पर जीते जी चिता में भस्म हो जाना ही निश्चित किया। वह चितारोहण कर चुका। चिता में अग्नि-संचार मात्र का विलंब था कि उसका पुराना मित्र वैताल यह समाचार पाकर दौड़ता हुआ उसके पास आया और उसे चिता से यह कहकर पृथक् किया कि मैं अमृत लाकर दोनों को पुनरुज्जित कर दूँगा। वह पाताल से अमृत लाया और माधव के मुख में एक बूँद टपकाकर उसे जिलाया। वह 'कंदला कंदला' चिल्लाता हुआ उठ बैठा। राजा सभासमेत प्रफुल्ल हो गया। इसी प्रकार वैताल ने राजा के साथ जाकर कामंदला को भी जिलाया। वह भी माधव का नामोच्चारण करती हुई प्रबुद्ध हुई। विक्रम ने उसे सारे वृत्तांत से अवगत किया और अपना भी रहस्य उद्घाटित कर दिया। कामकंदला ने उस जैसे परोपकारी की प्रशंसा की।

राजा ने वहाँ से लौटकर श्रीपति नामक रघुवंशी दूत को कामसेन राजा के पास भेजा कि युद्ध करोगे या कामकंदला को दे दोगे। राजा ने युद्ध का निश्चय किया। फलस्वरूप घनघोर युद्ध हुआ। दोनों पक्षों के कितने ही शूर-वीर शिव की मुंडमाल में अपने कपालों को अर्पित कर सूर्य-मंडल वेध स्वर्ग सिधारे। पर विक्रम की विश्वविजयिनी सेना के समक्ष वह बेचारा कब तक टिकता, अंततोगत्वा वह हारा और उसने विक्रम को कामकंदला देकर संधि की। माधव को कामकंदला सौंपकर विक्रम उज्जयिनी लौट गया। वे दोनों पुष्पावती गए।

पर 'खोज' (१९२३-९) में जो बड़ी पोथी उपलब्ध हुई उसमें मूल कथा के आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे और भी कुछ अवांतर या प्रासंगिक कथाओं का संविधान किया गया है। मंगला-चरण के अनंतर उसमें इंद्र की सभा का वर्णन है, जिसमें जयंती नाम की अप्सरा उर्वशी की भाँति अभिशप्त होती है, वह शिला होकर वन में पड़ी रहती है। माधव अपने गुरु के लिये सामग्री लेने जाता है और शिला को देखता है। उसके द्वारा शिला का उद्धार होता है। माधव उसके साथ इंद्र की सभा देखने की इच्छा करता है। जयंती उसके गुण पर रीझती है, वह पृथ्वी पर कामकंदला के रूप में अवतरित होती है। पुष्पावती नगरी के नरेश गोविंद्रचंद्र के यहाँ से माधव निर्वासित किया जाता है और कामावती नगरी में आता है, वहाँ राजा की दी हुई भेंट वह कामकंदला के नृत्य-कौशल पर रीझकर दे देता है। राजा उसकी धृष्टता पर खीझकर देसनिकाले की घोषणा करता है। विक्रम से सहायता प्राप्त कर वह कामावती पर उसे चढ़ा लाता है। कामकंदला और माधवानल की मृत्यु होती है, और वैताल अमृत लाकर उन्हें जिलाता है। युद्ध होने पर कामसेन पराजित होता है और कामकंदला को दे देता है, जिसे पाकर माधव घर लौटता है।

श्री बालकृष्णदास की हस्तलिखित प्रति आरंभ में खंडित है, पर अंत में बहुत सा अंश 'सभा'-वाली छोटी प्रति से उसमें अधिक अवश्य संनिविष्ट है, जिसमें माधव के पिता शंकरदास का वर्णन आदि आ गया है। विक्रम माधव के अनुरोध करने पर उसके साथ पुष्पावती की ओर गया। राजा ने विक्रम का आगमन सुना, तो अपने पुरोहित शंकरदास को दूत बनाकर उसके पास भेजा। वह विक्रम के पास पहुँचकर उसे भेंट आदि देकर आने का कारण पूछने लगा। विक्रम ने भी शंकरदास की उदासी का निमित्त जानने की जिज्ञासा की। वह रो पड़ा और कहने लगा कि मेरा पुत्र पुष्पावती से निर्वासित होकर कामावती नगरी की ओर गया, तब से उसका पता नहीं चलता। विक्रम ने माधव को उसके सामने किया। पिता परम प्रसन्न हुआ। माधव ने निर्वासित होने के पश्चात् की सारी गाथा पिता के समक्ष निवेदित की। विक्रम ने कहा कि मैं तो केवल माधव को सौंपने के लिये आया था, मेरा कोई अन्य प्रयोजन नहीं। पुरोहित ने लौटकर गोविंद्रचंद्र से पूरी कथा कही। राजा ने आकर सत्कारपूर्वक माधव को नगर में बुलाया।

श्यामसनेही

इसमें रुक्मिणी-विवाह की प्रसिद्ध कथा दोहे, चौपाइयों में कही गई है। इसमें वर्णनों का विस्तार किया गया है। शिशुपाल के साथ स्थिर हुए रुक्मिणी के विवाह में किस प्रकार श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के पत्र पर जाकर उसका हरण किया, इतनी ही तो कथा है, अतः उसका विस्तार वर्णनों से ही हो सकता था। प्रबंधकाव्य के घटनात्मक, भावात्मक, विचारात्मक और वर्णनात्मक अवयवों में से किस प्रकार वर्णनात्मक अवयव की प्रधानता हिंदी में बहुत दिनों से चली आ रही है, इसका प्रमाण 'श्यामसनेही' भी है। केशवदास जी ने जिस प्रकार 'रामचंद्र चंद्रिका' में विवाह के प्रसंग में गाली भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गवाई है उसी प्रकार रुक्मिणी के विवाह में 'आलम' ने भी। तुलसीदास जी ने 'गारि गावहिं' कहकर बात टाल दी है। पर 'आलम' ने उसको टाला नहीं। यह प्रेम और भक्ति दोनों की रचना है। इसे कवि ने स्पष्ट कहा है—

प्रेम रु भक्ति ताहि मन भावैं। करै कंठ जग सोभा पावै।

इसके नामकरण का कारण भी दिया है—

प्रीति सब अंग सुंदर देही। नाम धर्‍यौ तिहि 'स्याम-सनेही'।

निर्माण का कारण यह है—

आलम जीवहु जो पलक, इहि चंचल संसारु।
दै अहार पोषहु मनहिं, प्रेम भक्ति आधारु॥

भाषा इसकी अवधी, व्रज दोनों की खिचड़ी है।

सुदामाचरित

इसमें सुदामा की प्रसिद्ध कथा ली गई है। दरिद्र सुदामा अपने गाँव में दीन-हीन अवस्था में निवास करते हैं। उनकी स्त्री ने जब सुना कि मेरे पति के मित्र द्वारकाधीश हैं तो वह उन्हें द्वारका जाने के लिये प्रेरित करने लगी। अपनी दरिद्रता और श्रीकृष्ण के वैभव का वैषम्य सामने कर वे द्वारका जाने में आगा-पीछा करने लगे। ब्राह्मणी ने जब बात-चीत में उनके न जाने का व्याज उपायन का अभाव सुना तो वह पड़ोसिन से चावल माँग लाई, जिसे लेकर सुदामा द्वारका चले। वहाँ श्रीकृष्ण ने उनका आतिथ्य-सत्कार किया, उनकी चावलों की पोटली छीनकर प्रेमपूर्वक उससे दो मुट्ठी चावल चबाए। सुदामा लौटने लगे, तो उन्हें कुछ नहीं दिया। उधर श्रीकृष्ण ने विश्वकर्मा को भेजकर उनकी झोपड़ी को राजप्रासाद में परिवर्तित कर दिया। सुदामा अपने घर पहुँचे, तो उन्हें झोपड़ी के स्थान पर राजप्रासाद मिला। सारा रहस्य खुला, तो वे श्रीकृष्ण की उदारता पर चकित रह गए।

'सुदामाचरित' में प्रायः इतनी ही कथा का ग्रहण हिंदी के अनेक कवियों ने किया है। बीच बीच में कुछ प्रसंगों का वर्णन करने में भले ही विस्तार कर दिया हो, घटना-चक्र प्रायः इतना ही लिया गया है। नरोत्तमदास जी का 'सुदामाचरित' बहुत ही प्रसिद्ध और सरस भी है। संवादों का विधान उसमें रमणीय है और नाटकीय ढर्रे का है। 'आलम' का 'सुदामाचरित' नरोत्तमदास जी की रचना से बहुत मिलता जुलता है। नरोत्तमदास जी का रचना-काल सं० १६०२ के आसपास माना जाता है। वे बाड़ी ग्राम (सीतापुरा) के बतलाए जाते हैं। हो सकता है 'आलम' के सामने उनकी पोथी रही हो। ऐसा मानने में कोई बाधा नहीं है। कृष्ण-भक्ति का जो प्रवाह वल्लभाचार्य और चैतन्यदेव की प्रस्थापनाओं के परिणाम-स्वरूप प्रवाहित हुआ उसमें भक्त कवियों ने तो योग दिया ही, शुद्ध काव्य की प्रेरणा से भी उसकी ओर लोग प्रवृत्त हुए। भक्त कवियों ने तो वृंदावन को लीला-भूमि बनानेवाला श्रीकृष्ण का बाल और यौवन जीवन चुना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उनके जीवन के अन्य रसात्मक खंड भी आकर्षक प्रतीत हुए, जिनमें से सुदामा का दारिद्र्य-मोचन भी उनके प्रेम-भाव के उदात्त रूप का निदर्शक था। ऐसा प्रतीत होता है कि भक्त कवियों ने तो पदों में अपनी संगीत-धारा प्रवाहित की, पर काव्य की ओर रमे रहनेवालों ने हिंदी के कवित्त-सवैया छंदों में उनके जीवन के इन्हीं रसात्मक खंडों को या उनके द्वारा व्यक्त अन्य रसात्मक खंडों को भी ग्रहण किया। नरोत्तमदास जी के 'सुदामाचरित' का विशेष प्रसार हुआ। काव्य-भाषा व्रज में तो उसका बंध बाँधा ही गया था। लोक-भाषा के रूप में रेखता या खड़ीबोली फैल चुकी थी, बोलचाल की भाषा में उसे लाने की आवश्यकता समझकर ही 'आलम' ने उसे 'रेखता-बंद' कर दिया। निश्चय ही नरोत्तमदास जी का ग्रंथ पहले पूरबी देशों में फैला होगा। 'आलम' की व्रजभाषा अवधी या पूरबी प्रयोगों से लदी हुई है। इसलिये यदि यह माना जाय कि वे पूरब के ही निवासी थे तो 'सुदामाचरित' का 'रेखता-बंद' होना यह बतलाता है कि यह भाषा लोक-भाषा के रूप में छाने लगी थी या पूरब में छा गई थी। अथवा यह मानना पड़ेगा कि वे पहले पूरब में रहते थे, बाद में कहीं पछाँह में जा बसे। वहाँ उन्होंने इसे 'रेखता-बंद किया। सुना जाता है कि 'आलम' जौनपुर जिले के रहनेवाले थे, पर अभी तक जो सामग्री मिली है उसके आधार पर 'आलम' के निवास-स्थान का पक्का निश्चय नहीं हो सकता। यहाँ स्थान का निर्णय विषयांतर भी है।

आलमकेलि

इसके वर्ण्य विषय इस प्रकार हैं—श्रीकृष्ण की बाललीला, नवोढ़ा, प्रौढ़ा, अभिसार, मानिनी, संकेतस्थल, नायक की दूती, विरह-वर्णन, सखी की उक्ति सखी प्रति, खंडिता, प्रेमकथन, वंशी, प्रवत्स्यत्पतिका, भँवरगीत, उद्धव का लौटना, जसोदा-विरह, गोपी-विरह, पवन-वर्णन, यमुना-कुंज, गंगा-वर्णन, दीनता, शिव के कवित्त, देवी के कवित्त, रामलीला, रेखता, सवैया (प्रेम-वर्णन), विपरीति, यशोदा की उक्ति, नवयौवना, मानवर्णन, चंद्रकलंक, कुचछवि, युगलमूर्ति, अभिसार, आगतपतिका और शांतरस। इस तालिका से स्पष्ट है कि 'आलमकेलि' में 'आलम' और 'शेख' की ये स्फुट रचनाएँ क्रमबद्ध की गईं और शीर्षकों में बाँटी गई हैं। प्रश्न होता है कि स्वयं कवि ने ऐसा किया या किसी दूसरे ने। संग्रह दूसरों के द्वारा ही हुआ है; क्योंकि 'आलम' की रचना पर चाहे जिस प्रकार से विचार किया जाय वे स्वच्छंद वृत्ति के प्रेमी कवि ही प्रतीत होते हैं। उनकी रचनाओं में रीतिबद्ध कृतियाँ अवश्य हैं, पर सारी रचनाएँ रीति के साँचे में ढली नहीं है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में किसी रीति-प्रेमी व्यक्ति ने, चाहे वह उनका अनुगामी ही रहा हो, इन्हें विभाजित किया। शृंगार की कविता का विभाजन करने के लिये नायक-नायिका के अवांतर भेद विशेष अनुकूल और सुख-साध्य थे। इसी से उनकी रचना इस प्रकार विभाजित की गई। शृंगार-काल के कवियों की प्रवृत्ति यह जान पड़ती है कि वे पहले रीतिबद्ध रचना में संलग्न हुए, पर उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंधनों में इन उन्मुक्त कवियों की वाणी बँधकर नहीं चल सकती थी, इसलिये ये रीति के बंधन से मुक्त होकर स्वच्छंद मार्ग पर चलने लगे। श्रीकृष्ण का स्वच्छंद प्रेम, जो भक्ति-भूमि पर खड़ा हो गया था, इनकी प्रवृत्ति के अनुकूल और आधार रूप मिल गया। फल यह हुआ कि ये स्वच्छंद गायक कृष्ण-काव्य की ओर मुड़े और इनमें भक्ति का रंग चढ़ गया। रीतिबद्ध रचना का पर्यवसान कृष्ण-भक्ति में नहीं होता, यद्यपि शास्त्रसंमत विधि के अनुकूल उनकी शृंगारिक रचनाएँ राधा और कृष्ण के प्रेम को ही लेकर चलती हैं, श्रीकृष्ण के जीवन की स्वच्छंद वृत्तियों में उनकी प्रवृत्ति नहीं लक्षित होती, वे श्रीकृष्ण या राधा के क्रीड़ा-कौतुकमय जीवन में डूबने के स्थान पर नायक-नायिका के हावभाव में डूबे दिखाई देते हैं। पर इन उन्मुक्त विचरण करनेवालों ने उनके मुक्त जीवन की रमणीयता बारंबार सामने की है। रसखानि को इस प्रकार की रचना का संस्थापक मानने में इसी लिये कोई बाधा नहीं दिखाई देती। उनकी रचनाओं में भी कुछ रीतिबद्ध हैं, कुछ स्वछंद वृत्ति का पोषण करनेवाली और कुछ श्रीकृष्ण के स्वच्छंद जीवन का पूर्ण आभास देनेवाली भक्ति-भावित। यह रसखानि की स्वच्छंद वृत्ति की ही देन है, जो उन्हें भक्ति के क्षेत्र में ले जाकर, "मानुस हौं तौ वहै रसखानि बसौं बन गोकुल गाँव के ग्वारन।" आदि कहने की प्रेरणा उत्पन्न करती है। इसलिये एक ओर इन स्वच्छंद कवियों की कुछ रचनाएँ यदि रीतिबद्ध कविता करनेवालों से मिलती हैं तो कुछ उनसे पृथक् भी दिखाई देती है, क्योंकि इनकी रीतिबद्ध रचना में भी शास्त्र-स्थिति-संपादन की इच्छा स्वल्प और भावाभिव्यंजन की रुचि प्रभूत परिमाण में है। दूसरी ओर ये भक्त कवियों से जा मिलते हैं, पर उनसे भी पृथक् लक्षित होते हैं, क्योंकि इनकी रचनाओं में भक्ति की स्थिरता के स्थान पर स्वच्छंदता की चपलता और भाव-धारा का वेग है। इसलिये रसखानि को, कृष्ण-भक्त मानते और जानते हुए भी, स्वच्छंद गायकों की श्रेणी में रखना प्रवृत्तियों के विभाजन के सुभीते के लिये अपेक्षित है। कवित्त-सवैयों की ओर ये इसी से प्रवृत्त थे। संगीत के बंधनों से भी ये अपने को उसी प्रकार मुक्त रखना चाहते थे जिस प्रकार काव्य के शास्त्र-संमत बंधनों से। देवी-देवताओं के प्रति रसखानि की उदार वृत्ति भी यही बताती है कि ये वस्तुतः कृष्ण-भक्त होते हुए भी सांप्रदायिक बंधनों से अपने को पृथक् रखना चाहते हैं। 'भागवत' के नवम स्कंध की कथा को भी बाँधने के विचार से सूर ने रामचरित भी पदों में गाया, पर साफ जान पड़ता है कि उनकी रुचि वहाँ से काम निबटाकर भागने का यत्न कर रही है। रसखानि या 'आलम' की रचनाओं से यह प्रतीत नहीं होता। 'भागवत' का आधार लेकर चलने के कारण राम-कथा भी कहनी ही पड़े, यह बंधन तो इनके सामने नहीं था, फिर भी ये ऐसा करते हैं, इसका कारण इनकी स्वच्छंद, पर उदार वृत्ति ही है। पंच-देवोपासना की जो प्रतिष्ठा पुराणों की भावना के प्रसार के कारण हो गई थी और जिसके परिणाम स्वरूप इन देवों की अभिन्नता प्रतिपादित हो चुकी थी, इन्होंने उसी का ग्रहण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

अजित — लेखक—श्री मैथिलीशरण गुप्त। प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)। मूल्य १॥)।

'अजित' भारत की राष्ट्रीय चेतना-धारा का प्रवाहक प्रबंधकाव्य है। इसे मैं राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' के 'उपसंहार' के रूप में ग्रहण करता हूँ—यद्यपि 'भारत-भारती' तथा 'अजित' की विषय-सीमाओं में थोड़ा अंतर है। 'भारत-भारती' भारत की संपूर्ण संस्कृति को लेकर चलती है और 'अजित' केवल राजनीति को ही ग्रहण करता है। इस थोड़े अंतर का भी कारण है; और यह कारण इन काव्यों के रचना-काल की परिस्थितियों से संबद्ध है। 'भारत-भारती' के रचना-काल की परिस्थिति में संपूर्ण भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान की चेतना-धारा प्रवाहित हो रही थी और 'अजित' के रचना-काल की परिस्थिति में अति प्रमुख रूप से भारतीय राजनीतिक चेतना-धारा। इन्हीं चेतना-धाराओं के संग चलने के कारण उक्त काव्यों में थोड़ा अंतर है। दोनों काव्यों की वृत्ति मूलतः समान होने के कारण 'अजित' हमें 'भारत-भारती' का पूरक अवश्य लगता है। हम देखते हैं कि 'भारत-भारती' की आकांक्षाएँ 'अजित' में पूर्ण होने के मार्ग पर हैं—यद्यपि पूर्ति का मार्ग केवल राजनीतिक है। यह इसी कारण कि भारतीय राजनीतिक स्वातंत्र्य के द्वारा ही संपूर्ण सांस्कृतिक पुनरुत्थान अवलंबित समझा गया। यदि 'अजित' की पूर्ति स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हुई होती तो इसमें निश्चय ही 'भारत-भारती' में आकांक्षित स्वतंत्रता का विजय-गान भी गाया गया होता।

'अजित' में अजित तथा उसके संपर्क में आनेवाले व्यक्तियों की जीवन-कथा के सूत्रों द्वारा भारत में अँगरेजों की सारी क़रतूतों, भारतीय जनता में स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये किए गए विभिन्न प्रयत्नों तथा इन प्रयत्नों में उठी अनेक समस्याओं का वर्णन है। इसमें हिंदू-मुसलमान का प्रश्न, पुलीस और सेना में जागरूकता, अँगरेजों के जाने के बाद रूस के आने का भय, द्वितीय महायुद्ध, हैलटशाही, नेदरसोल, 'जनयुद्ध' की घोषणा करनेवाले कम्यूनिस्ट, बंगाल का अकाल, '४२ का विद्रोह और उसमें अँगरेजों के अत्याचार, जय हिंद, नेताजी, रचनात्मक कार्यक्रम, गांधीवाद, क्रांतिकारी आंदोलन आदि सभी का प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः समाहार है। इस प्रकार इसमें भारतीय राजनीति की गत १५–२० वर्षों की झाँकी है।

उक्त व्यक्तियों और घटनाओं की झाँकी कराते हुए भी कवि का लक्ष्य गांधी-दर्शन तथा गृहस्थ-धर्म के प्रति आस्था का प्रतिपादन जान पड़ता है। निर्दोष अजित कारागार में बंद होता है। वहाँ दादा श्यामसिंह के संपर्क में आकर उसमें स्वातंत्र्य-प्रेम की वृत्ति जगती है। बंदीगृह से निकलने पर अपने घर के सभी प्राणियों को नष्ट हुआ देख वह भारतमाता की बेड़ियों को काटने के उद्देश्य से क्रांतिकारी दल में संमिलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। परंतु लुकाछिपी के जीवन से ऊबकर वह अपने विचारों की परिणति गांधीवाद में करता है। क्रांतिकारी विचार-दर्शन से उसकी आस्था जाती रही। उसकी आस्था बाह्य (तन) से हटकर अभ्यंतर पर जाती है। वह कहता है—

सब ने किया प्रयास सदा तन के रोगों पर,
क्यों अब नए प्रयोग न हों उनके योगों पर?
गांधी जी का यही यत्न, प्रभु करे सफल हो,
क्या बाहर के विघ्न, हमारे भीतर बल हो।

अजित गांधीवाद के प्रति अपनी आस्था को जीवन में भी घुलाता-मिलाता है। जिस जमीनदार पार के कारण अजित का सत्यानास हुआ था उसके पुत्र रज्जू को वह और उसका ममेरा भाई धनराज जान से मार डालना चाहते थे, मगर अंत में रज्जू तथा अजित दोनों के मन की मैल धुल जाती है और दोनों वैर-भाव त्यागकर जीवन में पारस्परिक रूप से सहायक बनते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने गांधीवाद का प्रतिपादन पूर्ण रूप से किया है। मन की इस विशुद्धि के पश्चात् लोक-जीवन में प्रवृत्त होने का व्रत लिए हुए भी अजित को गार्हस्थ्य धर्म में लगाना कवि क्यों श्रेयस्कर समझता है, यह विचारणीय है। अजित इतना आगे बढ़ आया है कि उसके लिये गृह-जीवन की अपेक्षा लोक-जीवन ही श्रेयस्कर था। अस्तु। अंत में अजित कहता है—

आया था हे राम! तुम्हें यह जीवन देकर,
जाता हूँ मैं आज तुम्हारा ही बल लेकर।

अजित की इस वृत्ति में प्रवृत्ति मार्गी वैष्णव भक्त कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का सात्त्विक गृह-जीवन के प्रति आस्था का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त प्रबंधन-कला के कुशल कवि हैं। 'अजित' में भी उन्होंने कथा का संविधान कलात्मक ढंग से किया है। कथा में प्रभूत क्षिप्रता है, अतः केवल बाँचनेवालों को यत्र तत्र धोखा हो सकता है। कथा कवि नहीं स्वयं अजित कहता है, जिसमें संलापों का प्राधान्य है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त अपने काव्य-जीवन की प्रौढ़ावस्था से शैलीगत नवीन प्रयोग हिंदी-साहित्य के संमुख बराबर रखते आ रहे हैं। 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर' और 'कुणाल-गीत' इसके प्रमाण हैं। 'अजित' को भी मैं एक नवीन प्रयोग के रूप में ही ग्रहण करता हूँ। इधर साहित्य को जनता तक पहुँचने की बात बराबर कही जा रही है; और साहित्य जनता तक तभी पहुँच सकता है जब उसको भाषा-शैली में सारल्य का संनिवेश किया जाय। 'अजित' में हम भाषा-शैली की यह सरलता पाते हैं, और इस कार्य में कवि को पूरी सफलता मिली है। काव्य की विशिष्टताओं के समावेश के साथ ही 'अजित' में व्यवहार की भाषा का प्रयोग है, जिसमें तद्भव शब्दों का ही आधिक्य है। कहीं कहीं देशज शब्द भी आए हैं। इसमें 'तिकड़म' 'बकझक', 'बतियाना' जैसे शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग है और इस प्रकार की भी कथन-प्रणाली है—

दुगने ऊँचे उठा न दूँ तो नाम नहीं फिर।

आचार्य द्विवेदी की बोलचाल के गद्य की भाषा तथा पद्य की भाषा की एकता की कल्पना संभवत: 'अजित' में ही साकार हो सकी।

नकुल—लेखक-श्री सियारामशरण गुप्त। प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), मूल्य १॥)।

'नकुल' को मैं प्रतीकात्मक काव्य के रूपमें ग्रहण करता हूँ और इसी रूप में इसका महत्त्व भी स्थापित किया जा सकता है, अन्यथा इसमें नकुल के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन अल्प और युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, कृष्ण के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन अधिक है। अभिप्राय यह कि स्थूलत: नकुल का महत्त्व काव्य में विशेष नहीं लक्षित होता। नकुल अन्य चारों भाइयों के, यहाँ तक कि अपने छोटे सहदेव के भी, स्नेह-भाजन अवश्य हैं, सभी इनका विशेष खयाल रखते हैं। इस प्रकार स्नेह-भाजन होने के कारण नकुल में थोड़ा बाल-चापल्य भी है, जिसकी अभिव्यक्ति भीम करते हैं—

अब भी बालक वही चिरायुष्मान नकुल है,
गया बहुत कुछ गया नहीं इसका वह शैशव,
तब तो ऊँची बड़ी बात कह उठता जब तब!

सबके प्रेम-पात्र होने के कारण ये निश्चिंत भी रहते हैं। इन्हें वाद्य आदि भी, जैसे, वंशी, प्रिय है। नकुल एक प्रकार के वाद्य का नाम भी है।

नकुल के प्रति सबका स्नेह होने के कारण पाठक की दृष्टि उनके प्रति अवश्य जाती है, मगर वह उनसे प्रभावित नहीं होता है। वह प्रभावित तो होता है नकुल को लेकर युधिष्ठिर द्वारा व्यक्त किए गए जीवन-दर्शन से। वज्रबाहु द्वारा विषय बनाए गए अमृत ह्रद का जल पीकर जब युधिष्ठिर के अतिरिक्त कृष्णसहित सभी पांडव मूर्छित हो गए तब शोकाकुल युधिष्ठिर से मणिभद्र ने कहा कि कैलासपुरी से मुझे संजीवन-कण मिला है, कहिए तो मैं उसका उपयोग करूँ। इसे सुन युधिष्ठिर ने तुरत नकुल का नामोच्चार किया और जब जब मणिभद्र ने पूछा तब तब उन्होंने नकुल का ही नाम लिया। इससे मणिभद्र ने आश्चर्यान्वित हो धर्मराज से कहा कि अर्जुन और भीम का महत्त्व भी तो कम नहीं! इसे सुन युधिष्ठिर ने कहा—

छोटे के भी लिये बड़े से बड़ा समर्पण—
किया जाय जब, तभी धर्म-धन का संरक्षण।

× × ×

थकित बड़े जन सोच रहे हैं—इस भूतल के
जन जितने हैं जहाँ कहीं हलके से हलके,
रहने उनके लिये न देंगे संजीवन-कण,
सुख सब अपने अर्थ, अन्य का शोषण, शोषण!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मराज की इस चिंतना को सुन मणिभद्र ने कहा कि छोटे-बड़े का भेद तो बना ही रहेगा। इस पर उन्होंने कहा—

होगा निश्चय क्षुद्र-महत् का भेद भुवन में,
सब हैं एक समान परंतु मरण-जीवन में।
सोच रहे हैं आर्य कि गांडीवी के खर शर—
कर सकते हैं शांति प्रतिष्ठित इस पृथ्वी पर।
मुझको तो विश्वास नहीं है रंचक इसमें,
देंगे कैसे अमृत, बुझे स्वयमपि जो विष में!
धरना होगा आत्मदान के पावन-मग को,
नव जीवन परिपूर्ण जिन्हें करना है जग को।

× × ×

लेना होगा निखिल-क्षेम-व्रत निर्भय हम को,
देना होगा बड़ा भाग लघु से लघुतम को।

यह सुन मणिभद्र ने अपनी संजीवनी का प्रयोग पहले नकुल पर ही किया और जो शेष था उसे उन्हीं को समर्पित कर दिया। नकुल कुशल वैद्य के रूप में भी विख्यात हैं। पशु-चिकित्सा के ये विशेषज्ञ थे। धर्म और युद्ध-शास्त्र में भी ये पारंगत थे। अस्तु। इस प्रकार हम देखते हैं कि नकुल के आश्रय से वर्तमान युग में स्थापित समाज और जीवन-दर्शन का शाश्वत सत्य अभिव्यक्त किया गया है। नकुल समाज और जीवन के लघु के प्रतीक अथवा प्रतिनिधि हैं। कवि का कथन है कि समाज और जीवन में जो व्यक्ति छोटे हैं उनके रक्षण का भार बड़ों को ग्रहण करना चाहिए और उन्हें उनका अधिकार प्रदान करना चाहिए। कवि ने धर्मराज द्वारा अहिंसा की भावना भी व्यक्त कराई है। अब यह स्पष्ट है कि काव्य का लक्ष्य नकुल को ही लेकर स्थापित होता है, अतः काव्य में उनके गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णना की अल्पता में भी उसका नाम 'नकुल' रखा गया। इस मीमांसा से यह विदित होता है कि 'नकुल' युग की चिंतना-धारा को स्पर्श करता चला है। यह युग-काव्य है। जीवन तथा समाज के अन्य तथ्यों की अभिव्यक्ति भी कवि ने यथास्थल की है।

श्री सियारामशरण गुप्त मँजे कलाकार हैं। अतः उनकी रचनाओं में काव्य-कला के सभी तत्त्वों का समावेश स्वाभाविक है। 'नकुल' में इनका चाहे जहाँ भी दर्शन किया जा सकता है। 'नकुल' की कथा का संविधान बहुत ही कलात्मक है; इस संविधान में श्री सियारामशरण की कथाकारिता भी उभरी हुई दृष्टिगत होती है। कथा की संयोजना में कथा के कुतूहल आदि तत्त्वों पर ध्यान रखा गया है। पुस्तक की कथा पाँच अंशों में विभक्त है और यह क्रमशः विकसित होते होते अंतिम अंश में पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँचती है। कथा की धारा मंथर गति से प्रवाहित हुई है और मार्ग में पड़नेवाले सभी भावों और वस्तुओं के रमणीय चित्र कवि उपस्थित करता है। कवि ने प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110739

खींचे हैं। पंचम अंश में एकाध स्थल पर कथा अस्वाभाविक रूप से रुकती जान पड़ती है। इसी अंश में अमृत ह्रद का विषमय जल पीकर युधिष्ठिर के अतिरिक्त सभी पांडव तथा कृष्णा मूर्छित होते हैं और इसी में मणिभद्र तथा युधिष्ठिर के माध्यम से कवि ने युधिष्ठिर द्वारा जीवन-दर्शन प्रस्तुत कराया है। युधिष्ठिर इतने व्याकुल थे कि मणिभद्र को शीघ्रातिशीघ्र अपनी संजीवनी का उपयोग करना चाहिए था। मगर वे युधिष्ठिर से तत्त्व-दर्शन प्राप्त करने के लिये रुकते से जान पड़ते हैं और इसे जानने के बाद औषध का प्रयोग करते हैं। सबों के मूर्च्छा से उठने के पश्चात् भी तत्त्व-मीमांसा की जा सकती थी। श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'अजित' की भाँति ही 'नकुल' में भी अधिकतर कथा संलाप के सहारे आगे बढ़ी है। कवि ने अनेक स्थलों पर बहुत ही रमणीय अभि-व्यक्तियाँ की हैं। हृदय में हर्ष को उठने की अभिव्यक्ति कवि ने इस प्रकार की है—

शून्य हृदय में हुआ हर्ष का मृदु सुस्पंदन,
निश्चल नभ को मिला हंसमाला का वंदन।

कुरुक्षेत्र—रचयिता-श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'। प्रकाशक-आर० सिंह, पटना। मूल्य ३॥)।

'कुरुक्षेत्र' जीवन और जगत् की शाश्वत (और सामयिक भी) समस्याओं के द्रष्टा कवि द्वारा लिखित वर्तमान युग की 'गीता' है। वैसे तो 'गीता' के अनेक लक्ष्य प्रतिपादित हो सकते हैं, परंतु प्रसंग को लेकर विचार करने पर उसका लक्ष्य न्याय्य और लोकोपकारक कर्म का प्रतिपादन ही है। 'कुरुक्षेत्र' का लक्ष्य भी यही कर्मवाद है। 'गीता' में युद्ध-क्षेत्र में श्री कृष्ण के संमुख अर्जुन को विरक्ति होती है और 'कुरुक्षेत्र' में युद्धोपरांत विजय प्राप्त कर लेने पर भीष्म पितामह के संमुख युधिष्ठिर को विराग उत्पन्न होता है। 'गीता' में श्री कृष्ण ने अर्जुन को निर्लिप्त हो कर्म करने का उपदेश दिया था और 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को 'कर्म संन्यासी' होने का उपदेश करते हैं। इस प्रकार दोनों ग्रंथों के लक्ष्य की एकता स्थापित होती है। मगर यहाँ इसका ध्यान रखना आवश्यक है कि 'गीता' दर्शन-ग्रंथ है और 'कुरुक्षेत्र' काव्य-ग्रंथ, यद्यपि इसमें बुद्धि हृदय की चेरी नहीं स्वामिनी है। इसी कारण इसमें विचार-धारा स्फीत रूप से प्रवा-हित हुई है, भावाश्रय हृदय के लिये रमणीय घाट जिसके तट पर यत्र तत्र दिखाई पड़ते हैं।

'कुरुक्षेत्र' में सात सर्ग हैं, जिनमें से छठे सर्ग में विषयांतर है, इसे स्वयं कवि ने भी स्वीकार किया है। यह सर्ग वर्तमान काल की संहार-लीला से प्रेरणा ग्रहण कर लिखा गया जान पड़ता है। यदि इस सर्ग को विषयांतर न समझा जाय तो अन्य सर्गों से इसका संबंध-सूत्र इस रूप में जोड़ा जा सकता है कि द्वापर की नर-संहार की वृत्ति इस युग में भी दूर नहीं हुई है। इस सर्ग का प्रमुख प्रतिपाद्य यह है कि नर-संहार का मूल कारण है बुद्धिवाद का चरम विकास और मानव द्वारा हृदय की उपेक्षा—

किंतु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर

श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत;
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत;

'कुरुक्षेत्र' का प्रसंग युद्ध के पश्चात् का है। प्रथम सर्ग में विजयी युधिष्ठिर के संमुख युद्ध की समस्या और विभीषिका आती है। द्वितीय सर्ग में युद्ध की विभीषिका से भीत धर्मराज इसके द्वारा प्राप्त विजय को पाप-रक्त से रँगी विजय समझते हैं। वे कहते हैं कि यदि मैं महाभारत का ऐसा परिणाम जानता तो कौरवों से तन-बल से नहीं मनोबल से युद्ध करता। यहाँ वर्तमान युग के गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है। इस कुकर्म के पश्चात्ताप के लिये वे वन में जाना चाहते हैं। युधिष्ठिर को इस संघर्ष में पड़ा देख भीष्म ने कहा कि तुम व्यर्थ ही जल्पना में पड़ धर्माधर्म में फँसे हो। अभी तक मैं यह निर्णय नहीं कर पाया कि धर्म और अधर्म की सीमा-रेखा कहाँ है। कोई युद्ध करना नहीं चाहता मगर जब शत्रु ललकारता है तब तत्त्व-चिंतन छोड़ उससे भिड़ना ही पड़ता है। महाभारत में पाँच का ही स्वार्थ नहीं था, व्यक्तियों के संबंध से अन्य लोगों का भी स्वार्थ था। अपहर्ता के संमुख तप-त्याग दिखाना पाप है। उसका शिर काट लेना पुण्य है। व्यक्ति पक्ष से यदि महाभारत अनिवार्य न भी माना जाय तो समष्टि पक्ष से तो यह अनिवार्य ही था। मनोबल से तो मन के विकार जीते जाते हैं। शत्रु घेर लेते हैं तो तन-बल ही काम देता है। द्वितीय सर्ग में वस्तुतः अहिंसा (धर्मराज) और हिंसा (,भीष्म) की नोकझोंक है। इसमें तन-बल और मनोबल के प्रयोग की मीमांसा है। भीष्म अपने पक्ष को बहुत ही तार्किक ढंग से अपेक्षाकृत प्रबलतर प्रमाणित करते हैं।

तृतीय सर्ग में द्वितीय सर्ग की चिंतना का पल्लवन है। इसमें भीष्म कहते हैं कि शांति वे ही चाहते हैं जो परापहरण के उपभोग के लिये लालायित हैं। आगे वे कहते हैं कि इस प्रकार उपभोग के कारण जब अधिक लोग भूखों मरने लगते हैं तब क्रांति की सर्जना होती है। मनोबल से शांति की स्थापना की बात निर्बल करते हैं और सबल तन-बल से क्रांति करते हैं। ऐसी अन्य बातें भी इस सर्ग में कही गई हैं। भीष्म ने इसमें अनेक भेद-भावों से मुक्त शांति का समर्थन भी किया है। इस सर्ग में वर्तमान युग के शोषक-शोषित की चर्चा भी यत्र तत्र आई है। साम्यवाद की बात भी कही गई है—

शांति नहीं तब तक जब तक सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।

चतुर्थ सर्ग में महाभारत के कारणों का निर्देश है, संश्लिष्ट चित्रण नहीं। इस सर्ग में कुछ बातें ऐसी भी हैं जो पूर्व के सर्गों में कही जा चुकी हैं। भीष्म कहते हैं—'चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही है।' उन्होंने यह भी कहा कि यह युद्ध दो घरों का युद्ध नहीं वरन् भारतवर्ष के भूपालों के मन में स्थित विद्वेष के कारण घटित युद्ध था। राजसूय भी इसका एक कारण था। व्यास ने किसी ऐसी दुर्घटना के लिये भविष्यद्वाणी भी की थी। द्रौपदी का चीर-हरण भी इसका कारण है। इसी प्रकार महाभारत के अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारणों का उल्लेख भी भीष्म ने किया है। कारणों का बौद्धिक विवेचन ही है, संश्लिष्ट और काव्यात्मक चित्रण नहीं। अंत में भीष्म ने कहा है कि यदि मैं न्याय का पक्ष लेता तो महाभारत न होता—मैंने ही सुयोधन का पक्ष ग्रहण किया। उन्होंने यह भी कहा है कि ऐसी परिस्थिति में मैंने तन कौरवों को और मन पांडवों को दिया था।

पंचम सर्ग में युद्ध के महाविनाश को देखकर युधिष्ठिर का पश्चात्ताप है।

सप्तम सर्ग में कर्मवाद की पूरी मीमांसा है। सर्ग के आरंभ में ही मानव की वंदना करता हुआ कवि कहता है—

हार मान हो गई न जिसकी किरण तिमिर की दासी;
न्योछावर उस एक पुरुष पर कोटि-कोटि संन्यासी।

भीष्म कहते हैं कि सारा सुख प्रकृति अथवा पृथ्वी पर फैला है। कर्म-पथ का अनुगामी ही उन्हें प्राप्त करता है। भाग्यवाद पर कर्मवाद की विजय होती है। संक्षेप में मानव-समाज का विकास भी इस सर्ग में दिया गया है, जिसमें दिखलाया गया है कि कैसे कैसे मनुष्य राजा का अभिलाषी हुआ और कैसे फिर राजा दोहन में निरत। भीष्म ने धर्मराज से कहा कि अपने सुख को नहीं लोक के सुख की दृष्टि से महाभारत के परिणाम पर विचार करो। निर्लिप्त कर्म की मीमांसा कर भीष्म युधिष्ठिर को कर्मठ संन्यासी बनने का आदेश देते हैं। द्वितीय सर्ग में धर्मराज विजन में जाना चाहते हैं और अंतिम सर्ग में भीष्म उन्हें निर्लिप्त रूप से कर्म संलग्न होने का आदेश करते हैं। इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' निवृत्ति पर निर्लिप्त प्रवृत्ति की विजय का प्रतीक है।

'कुरुक्षेत्र' की रचना तब हुई जब सारा संसार युद्ध लिप्त था, अथवा किन्हीं रूपों में आज भी है। ऐसी अवस्था में इसमें युद्धपरक प्रायः सभी तत्त्वों की मीमांसा एक प्राचीन प्रसंग के सहारे कवि ने की है। युद्ध की समस्या, उसका मूल कारण, उसकी विभीषिका, उससे प्रवृत्ति-निवृत्ति, उसके पक्षापक्ष-ग्रहण आदि सभी तत्त्वों की विचारणा प्रसंगतः इसमें है। इसके अतिरिक्त युग की अन्य विचार-धारा वा प्रवाह भी इसमें मिलता है। जैसे, हिंसा, अहिंसा, साम्यवाद, गांधीवाद आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कुरुक्षेत्र' वर्तमान युग के दर्पण-सा हमारे संमुख खड़ा है।

'कुरुक्षेत्र' की पीठिका तर्क की है और इस पीठिका पर जो निर्माण हुआ है वह भी तर्क-संकुल है। काव्य रमणीय अर्थों का प्रतिपादक होता है, उसका लक्षण यही है, प्राधान्य भी इसी का होना चाहिए। 'कुरुक्षेत्र' में रमणीय अर्थों का प्रतिपादन अथवा निर्माण अत्यल्प है। कवि ने जो चिंतनाएँ सारी पुस्तक में दी हैं उनका निचोड़ अच्छी तरह अधिक से अधिक दो-तीन सर्गों में वह दे सकता था और शेष सर्गों में नर-जगत् तथा नरेतर जगत् को लेकर वस्तु-व्यंजना कर रमणीय अर्थ का प्रतिपादन—रमणीय चित्रों का चित्रण—कर सकता था। रचना का आरंभ कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात् होता है, अतः रमणीय अर्थों के चित्र प्रस्तुत करने के लिये स्मृति आदि का सहारा ले कुरुक्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के युद्ध के मूल तथा विस्तार में घटित सारे सक्रिय कार्य-व्यापार प्रस्तुत किए जा सकते थे। इस प्रकार संभवतः रचना में बुद्धिवाद की पीठिका का निवारण अथवा उसकी कमी हो जाती। अस्तु। परंतु कवि ने जो तर्क प्रस्तुत किए हैं उनके कौशल की सराहना किए बिना मन नहीं मानता। निश्चय कवि के इस कौशल पर चित्त चमत्कृत हो जाता है।

'कुरुक्षेत्र' के प्रबंधत्व की बात भी सामने आती है। प्रबंध का संबंध कथा से होता है। जहाँ तक कथा का संबंध है, वह 'कुरुक्षेत्र' में नहीं है। इसमें तो युद्ध के कारणों तथा उसको विनाश के प्रति पश्चात्ताप तथा ऐसी अन्य बातों को लेकर विचारणा की गई है, जो बौद्धिक है, भावात्मक नहीं। ऐसी अवस्था में कथा की नहीं विचारों की लड़ी सामने आती है। यथास्थल घटनाओं का निर्देश मात्र है, उनका वर्णन नहीं। विचारों के संग्रह और कथा के त्याग के कारण प्रत्येक सर्ग का अस्तित्व भी अलग अलग जान पड़ता है।

'कुरुक्षेत्र' में काव्य-तत्त्व की कमी है, इसका निर्देश मैंने किया है, मगर जिस तत्त्व का प्राधान्य है उसके लिये कवि की सराहना किए बिना नहीं रहा जा सकता। कवि को अपनी रचना में जो कहना था उसके लिये पीठिका का निर्माण भी बहुत ही व्यापक और विराट् है। यहाँ मेरा तात्पर्य 'कुरुक्षेत्र' के प्रथम सर्ग से है, जिसमें कवि ने युद्ध की समस्या को बहुत मार्मिक और मौलिक पक्ष से उठाया है, जिसका हल रचना पढ़कर पाठक स्वयं भी निकाल सकता है।

श्री दिनकर प्रधानतः वीररस के कवि हैं, अतः 'कुरुक्षेत्र' में ओज सर्वत्र व्याप्त है। जहाँ काव्यात्मक स्थल हैं वहाँ वे मार्मिक हैं। ऐसे स्थलों पर कवि ने अपनी बात को बाँकपन के साथ कहा है। जैसे—

रश्मि-देश की राह यहाँ तम से होकर जाती है,
उषा रोज रजनी के सिर पर चढ़ी हुई आती है।
और कौन है, पड़ा नहीं जो कभी पाप-कारा में?
किसके वसन नहीं भींगे वैतरणी की धारा में॥

श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'अजित' तथा श्री सियारामशरण गुप्त के 'नकुल' की भाँति 'कुरुक्षेत्र' की रचना भी संलाप-शैली में हुई है।

अनोखी कहानियाँ—लेखक–श्री मक्खनलाल दम्माणी। प्रकाशक–चाँद प्रिंटिंग प्रेस, किंग एडवर्ड मेमोरियल रोड, बीकानेर। मूल्य ।=)।

प्रस्तुत पुस्तक में बालोपयोगी सात ऐसी कहानियाँ संगृहीत हैं जिनका संबंध जादूगरी, पशुओं, पक्षियों, राजाओं, राजकुमारों, राजकुमारियों, दैत्यों आदि से है। ये मनोरंजक और आश्चर्यजनक हैं। बालकों का मन बहलाव इनसे अवश्य होगा। इनकी रचना का लक्ष्य भी यही है।

पुस्तक की भाषा में कुछ दोष रह गए हैं, जिनका सुधार हो जाना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकों के संमुख दुष्ट भाषा का रहना ठीक भी नहीं है। '**तुम्हारे** लड़के को मुझे दे दो,' '......**सौंप** दिया,' '**खेंचकर**,' 'सोना दे**ओ**', 'धोबी से विदा होकर अपने शहर की तरफ **रवाने हो गया**' में मोटे अक्षरों में लिखे शब्द क्रमशः इस रूप में होने चाहिए— 'अपने', 'सौंप', 'खींचकर', 'दो', 'रवाना हो गया'। आशा है लेखक की दृष्टि इनपर जायगी और इस प्रकार के दोष सुधर जायँगे।

कवि और छवि—लेखक-श्री बालकृष्ण राव। प्रकाशक-इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य २)।

'कवि और छवि' श्री बालकृष्ण राव का द्वितीय काव्य-संग्रह है। इसके पूर्व इनका एक काव्य-संग्रह 'आभास' नाम से सन् १९३६ में प्रकाशित हो चुका है। हिंदी-साहित्य के छायावाद-रहस्यवाद-युग की गति-विधि से जो परिचित हैं उनसे यह अप्रकट नहीं है कि श्री बालकृष्ण राव उस युग के प्रिय तथा प्रसिद्ध कवि हैं। इनके प्रगीत मुक्तकों (लीरिक्स) की अभिव्यंजना शैली, रहस्यवादिता और गीतिमत्ता से कोई अपरिचित नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक की रचनाएँ कवि के काव्य-जीवन की प्रौढ़ावस्था की है, अतः इनमें अपेक्षाकृत चिंतन और अनुभूति की मात्रा अधिक है। इसमें सन् '३५ से सन् '४६ तक की रचनाएँ संगृहीत हैं, इस कारण कुछ 'आभास'-कालीन रचनाओं की कोटि की भी हैं, परंतु ऐसी रचनाएँ उपेक्षणीय नहीं हैं। 'कवि और छवि' में कवि ने अपनी अनुभूति-शीलता के आधार पर जगत् और जीवन की चिंतनाएँ की हैं। इन चिंतनाओं के लिये उसने प्राकृतिक प्रतीकों का भी आश्रय लिया है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि 'कवि और छवि' में चिंतनशील रचनाओं का ही आधिक्य है। इन चिंतनशील रचनाओं के ही अंतर्गत वैसी रचनाएँ भी हैं जो दार्शनिक वा रहस्यवादी कोटि की हैं।

'कवि और छवि' की रचनाएँ छायावाद-रहस्यावाद-युग की विशेषताओं से संपन्न हैं। रचनाओं के विषय भी प्रायः उक्त युग के ही हैं। आशा है अब कवि की दृष्टि आज के युग पर भी जायगी और वह अपने प्रौढ़ कवित्व द्वारा वर्तमान विषयों को भी अमरता प्रदान करेगा। कवि की दृष्टि अब अपने से हटकर लोक पर भी जानी चाहिए।

शिवनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचनिका

संयुक्त प्रांतीय राजभाषा हिंदी

[संयुक्त प्रांत की सरकार ने हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने की ११ अक्टूबर सन् '४७ ई० को जो घोषणा की है उसका आवश्यक अंश नीचे दिया जाता है ।—सं०]

युक्त प्रांतीय सरकार ने पहली बार हिंदी में अपनी आज्ञा जारी की है। उसके द्वारा प्रांत की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी घोषित कर दी गई है। इसमें कहा गया है कि अब से सब सरकारी काम देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिंदी में होगा।

संयुक्त प्रांतीय कौंसिल के पिछले अधिवेशन में स्वीकृत निम्नलिखित प्रस्ताव को सरकार ने मान लिया था—

"यह कौंसिल सिफारिश करती है कि हिंदी भाषा तथा देवनागरी लिपि को इस प्रांत की राजभाषा तथा लिपि स्वीकार किया जाय।"

इस प्रस्ताव को कार्य रूप देने के उद्देश्य से सरकार ने उपर्युक्त आदेश जारी किया है।

जब तक उपर्युक्त निश्चय को वास्तविक और पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिये व्यापक प्रबंध नहीं कर लिया जाता तब तक हिंदी न जाननेवाले विचारपति तथा अन्य कर्मचारी, जब तक दूसरी आज्ञा न निकले तब तक, उसी तरह अदालती कार्रवाइयों को लिपिबद्ध कर सकते हैं जिस प्रकार वे अब तक वर्तमान कानून और नियमों के अनुसार करते आए हैं। हिंदी भाषा के प्रयोग में, संप्रति, इस बात की अनुमति रहेगी कि अँगरेजी के पारिभाषिक शब्द नागरी या रोमन लिपि में लिखे जायँ।

यह स्पष्ट कर दिया गया है कि हिंदी भाषा से अभिप्राय उस हिंदी भाषा से है जो संयुक्त प्रांत की जनता की भाषा है और जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

सरकारी कर्मचारियों के लिये विभागों की परीक्षाओं के नियमों में हिंदी को अब एक अनिवार्य विषय बनाने की कार्रवाई सरकार करनेवाली है।

अदालतों की भाषा

प्रांतीय सरकार ने आवश्यक विज्ञप्तियों द्वारा हिंदी को इस प्रांत की दीवानी और फौजदारी अदालतों की भाषा घोषित कर दिया है। टेनेंसी ऐक्ट की कार्रवाइयों में भी हिंदी का ही प्रयोग होगा। लैंड रेवेन्यू ऐक्ट के अधीन कार्रवाइयाँ हिंदी में कराने के लिये भी कार्रवाई की जा रही है।

सरकार का आदेश है कि

(देखिए आवरण का तीसरा पृष्ठ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त प्रांत की राजभाषा हिंदी

हर्ष का विषय है कि संयुक्त प्रांतीय सरकार ने प्रांत की जनता की भाषागत प्रवृत्ति को पहचानकर हिंदी को प्रांत की राजभाषा घोषित कर दिया है। हिंदी को जो पद मिलना चाहिए सरकार ने उसे उसी पर प्रतिष्ठित किया है। राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव में न आ प्रांत की राजभाषा हिंदी घोषित कर सरकार ने जो दृढ़ता दिखाई है, वह स्तुत्य तथा अन्य हिंदी प्रांतों के लिये अनुकरणीय है। हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकृत कर लेने के लिये प्रस्ताव करनेवाले बाबू परमानंद सिंह के प्रति भी हम कृतज्ञ हैं।

यहाँ यह निवेदन कर देना भी आवश्यक है कि संयुक्त प्रांतीय सरकार के कर्तव्य की इति हिंदी को प्रांत की राजभाषा घोषित कर देने भर से नहीं हो जाती। हिंदी को भारतवर्ष की राजभाषा स्वीकार कराने में सहायक होने का उसका कर्तव्य भी कम नहीं है। विद्वज्जनों को यह प्रकट है कि युगों से संयुक्त प्रांत (मध्यदेश) की जन भाषा ही सारे भारतवर्ष की भाषा होती रही है और हिंदी ही इस प्रांत की लोक-भाषा है। ऐसी दशा में इस प्रांत की सरकार तथा जनता का यह कर्तव्य है कि वह अपने प्रांत की भाषा की परंपरा को अखंड रखने का पूरा प्रयत्न करे। हिंदी तो स्वदेश की राष्ट्रभाषा है ही, इसे राजभाषा के रूप में हमें प्रतिष्ठित करना तथा कराना है; मगर राजनीतिक परिस्थिति के वशीभूत हो कुछ लोग हिंदी के प्रसार, अधिकार आदि से दृष्टि हटा-कर उसके प्रति अन्याय करना चाहते हैं। हमें सब प्रकार से इस अन्याय का सामना कर राष्ट्रभाषा हिंदी को भारत की राजभाषा स्वीकृत करानी है। इसके लिये संयुक्त प्रांतीय सरकार, अन्य प्रांतों की सरकारों, संयुक्त प्रांत की जनता तथा सारे देश की जनता की सहायता अपेक्षित है। आशा है इसमें सबका सहयोग बिना किसी सांप्रदायिक भेद-भाव के प्राप्त होगा। हिंदी की परंपरा भेदभाव से शून्य रही है और उसे ऐसा ही रहना चाहिए, पर न्याय्य अधिकार के लिये यदि सांप्रदायिकता या कोई राजकीय मनोवृत्ति आड़े आए तो हमें उसका साहसपूर्वक और सचाई से सामना भी करना चाहिए।

स्वर्गीय श्री कामताप्रसाद गुरु

श्री कामताप्रसाद गुरु द्विवेदी-युग के प्रमुख और प्रसिद्ध साहित्यकारों में से एक थे। यद्यपि आपने आरंभ में कविताएँ आदि भी लिखी हैं तथापि भाषा और व्याक-रण पर आपकी विशेष दृष्टि अपने साहित्यिक-जीवन के उदय-काल से ही थी। इन विषयों से संबद्ध आपके कई लेख 'सरस्वती' के प्रारंभिक अंकों में प्रकाशित हुए हैं। 'हिंदी-व्याकरण' जैसा हिंदी-भाषा का बृहत् तथा प्रामाणिक व्याकरण लिखना ऐसी रुचिवाले व्यक्ति के लिये ही संभव था। 'हिंदी-व्याकरण' के निर्माण के पश्चात् गुरु जी हिंदी के प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैयाकरण के रूप में प्रतिष्ठित हुए और उनकी यह प्रतिष्ठा आजीवन अद्वितीय बनी रही। उनके दिवंगत होने पर उन जैसा हिंदी का कोई दूसरा वैयाकरण नहीं दृष्टिगत होता। उनका 'हिंदी-व्याकरण' उनकी अमर कीर्ति के रूप में सदैव प्रतिष्ठित रहेगा, इसमें संदेह नहीं। इसे स्वीकार करने में संभवतः किसी को आपत्ति न होगी कि 'हिंदी-व्याकरण' हिंदी में अपने ढंग का पहला शब्दानुशासन है, और आज भी इसके समकक्ष दूसरा व्याकरण नहीं रखा जा सकता। आधुनिक युग में व्याकरण का अध्ययन-मनन जिस तुलनात्मक पद्धति से चल रहा था उसके अनुरूप ही हिंदी-भाषा का व्याकरण निर्मित करना उपयोगी था, अतः गुरु जी ने अँगरेजी की इसी तुलनात्मक पद्धति के आश्रय से कार्य किया। इसे निर्माण करते समय बंगाली, मराठी, गुजराती आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं की व्याकरण-पद्धति की भी तुलनात्मक मीमांसा पर गुरु जी की दृष्टि रही है। इस प्रकार समग्रतः पूर्ण 'हिंदी-व्याकरण' का निर्माण गुरु जी ने किया। व्याकरण के क्षेत्र में वे गुरु ही थे।

'सभा' पर गुरु जी की कृपा बराबर बनी रही और उनका ऐसा 'हिंदी-व्याकरण' प्रकाशित करने का सौभाग्य 'सभा' को ही प्राप्त है।

अमरकीर्ति गुरु जी के शोकसंतप्त परिवार के साथ हम समवेदना प्रकट करते हैं।

श्री सीताराम प्रेस, जालिपादेवी काशी।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा की प्रगति

[वैशाख से आश्विन २००४ तक]

वार्षिक अधिवेशन

सभा का चौवनवाँ वार्षिक अधिवेशन शनिवार २० वैशाख, संवत् २००४ को हुआ जिसमें संवत् २००४ के लिये सभा के निम्नलिखित पदाधिकारी और प्रबंध-समिति के सदस्य चुने गए—

पदाधिकारी

सभापति	...	श्री मैथिलीशरण गुप्त
उपसभापति (१)	...	श्री संपूर्णानंद
उपसभापति (२)	...	श्री श्रीनिवास
कार्याध्यक्ष	...	श्री रामनारायण मिश्र
प्रधान-मंत्री	...	श्री ब्रजरत्नदास
साहित्य-मंत्री	...	श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र
अर्थ-मंत्री	...	श्री गोपाललाल खन्ना
प्रकाशन-मंत्री	...	श्री अशोक जी
प्रचार-मंत्री	...	श्री सहदेव सिंह
संपत्ति-निरीक्षक	...	श्री बाँकेबिहारीलाल
पुस्तकालय-निरीक्षक	...	श्री रामस्वरूप
आय-व्यय-निरीक्षक	...	श्री जीवनदास

प्रबंध समिति के सदस्य

संवत् २००४ से २००६ तक—सर्वश्री रामचंद्र वर्मा, काशी। डा० फूलदेवसहाय वर्मा, काशी। राय कृष्णदास, काशी। ठाकुर शिवकुमार सिंह, काशी। मनोरमा सैटिन, काशी। वैजनाथ वाम्रे, संयुक्तप्रांत। डा० बाबूराम सक्सेना, सं० प्रांत। मदनमोहन सेठ, राज्य। मोतीलाल मेनारिया, राज्य। स्वामी हरनामदास उदासीन, सिंध। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, दिल्ली। सर्वजीत, असम। जी० सच्चिदानंद, मैसूर।

संवत् २००४ और २००५ के लिये—सर्वश्री डा० राजेंद्रनारायण शर्मा, काशी। देवीनारायण ऐडवोकेट, काशी। केशवप्रसाद मिश्र, काशी। कृष्णानंद, काशी। भगवतीशरण सिंह, काशी। भगीरथ कानोडिया, बंगाल। नीतिश्वरप्रसाद सिंह, उत्कल। श्रीनारायण चतुर्वेदी, सं० प्रांत। डा० कैलाशनाथ भटनागर, पंजाब। गोपालचंद्र सिंह, सं० प्रांत। विद्याधर शास्त्री, राज्य। शिवपूजन सहाय, बिहार। डा० ओमप्रकाश, ब्रह्मदेश।

संवत् २००४ के लिये—सर्वश्री रामऋषि शुक्ल, काशी। कृष्णदेवप्रसाद गौड़, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुरदास ऐडवोकेट, काशी। परमेश्वरीलाल गुप्त, काशी। मुरारिलाल केडिया, काशी। घनश्यामदास पोद्दार, बंबई। ब्योहार राजेंद्रसिंह, मध्य प्रांत। सरदार माधवराव विनायक राव किवे, राज्य। डा० धीरेंद्र वर्मा, सं० प्रांत। विश्वेश्वरनाथ वात्रे, राज्य। शांतिप्रिय आत्माराम, राज्य। ना० नागप्पा, सिंहल। सत्यनारायण मद्रास।

श्री अशोक जी के त्यागपत्र दे देने पर सभा के १० श्रावण के साधारण अधिवेशन में श्री रामचंद्र वर्मा प्रकाशन-मंत्री तथा श्री रामचंद्र वर्मा के स्थान पर श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे प्रबंध-समिति के सदस्य चुने गए।

उक्त वार्षिक अधिवेशन में सभा की नियमावली में निम्नलिखित संशोधन स्वीकार किए गए—

(१) नियम २० ग में '५०' के स्थान पर '६०' किया जाय।

(२) नियम २१ अपने निम्नलिखित पूर्व रूप में किया जाय—

"२१–सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा की मुख-पत्रिका बिना मूल्य दी जायगी। ये सभासद पत्रिका के पुराने अंक और सभा द्वारा प्रकाशित अन्य पत्रिका तथा पुस्तकों की एक एक प्रति ¾ मूल्य पर ले सकते हैं। परंतु प्रबंध-समिति को अधिकार होगा कि साधारण सभा की अनुमति से किसी विशेष पुस्तक को इस नियम के बाहर रखे।"

(३) नियम २२ के अंतर्गत सदस्यता के आवेदनपत्र में से 'प्रचारार्थ' और 'उद्योग' के बीच का 'निरंतर' शब्द पृथक् कर दिया जाय।

(४) नियम ३४ में 'दो उपसभापति' के उपरांत 'यथावश्यकता एक कार्याध्यक्ष' जोड़ा जाय।

(५) नियम ३५ में 'कम से कम एक का' के उपरांत 'एवं कार्याध्यक्ष का' जोड़ा जाय।

(६) नियम ३६ के अंत में यह वाक्य बढ़ाया जाय—"परंतु कार्याध्यक्ष के संबंध में यह नियम लागू न होगा।"

(७) नियम ४२ की नियम-संख्या ४३ की जाय तथा आगे की नियम-संख्याएँ इसी क्रम से ठीक कर ली जायँ एवं नवीन नियम ४२ इस प्रकार रखा जाय—

"४२. कार्याध्यक्ष के कर्त्तव्य तथा अधिकार—

क. सभा के प्रत्येक विभाग में अपनी मंत्रणा और सहयोग से विशेष जीवन-उत्साह प्रदान करना।

ख. केंद्रीय, प्रांतीय तथा राज्यों के विद्यामंत्रियों से संपर्क स्थापित करके सभा के उद्देश्यों की पूर्ति करना।

ग. भारत के प्रत्येक भाग में तथा बृहत् भारत में भारतीय संस्कृति, हिंदी-साहित्य और देवनागरी लिपि के विशेष प्रचार का कार्य करना।

घ. विदेशों में भारतीय संस्कृति की खोज और रक्षा का प्रयत्न करना।

ङ. सभा की शाखाओं का प्रसार और निरीक्षण करना।

च. सभा के लिये धन-संपत्ति संग्रह करना।"

(८) नियम ५० (परिवर्तित नियम-संख्या) में "दो उपसभापति" के उपरांत 'यथावश्यकता एक कार्याध्यक्ष' जोड़ा जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) नियम ५० में (घ) विभागके उपरांत (ङ) विभाग इस प्रकार जोड़ा जाय—

"ङ—विदेशों के ... ... २"

तथा इसके उपरांत समिति के सभासदों का योग '३९' के बदले "४१" किया जाय।

(१०) नियम ५४ की नियम-संख्या ५४ (क) की जाय तथा इसके उपरांत (ख) विभाग इस प्रकार जोड़ा जाय—

"ख—प्रबंध-समिति के विदेशस्थ सभासदों का वर्ष में कम-से-कम एक बार समिति के विचाराधीन कार्यों के संबंध में संमति भेजना आवश्यक होगा।"

(११) नियम ५६ में 'उपसभापति' के अनंतर 'कार्याध्यक्ष' जोड़ा जाय।

उक्त वार्षिक अधिवेशन के दिन निम्नलिखित साहित्यकारों के तैल-चित्रों का उद्घाटन हुआ-

१—श्री बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन'
२—श्री प्रतापनारायण मिश्र
३—श्री श्रीधर पाठक
४—श्री रामकृष्ण वर्मा
५—श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु'
६—श्री देवकीनंदन खत्री
७—श्री किशोरीलाल गोस्वामी
८—सर जार्ज ग्रियर्सन
९—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

पुरस्कार और पदक

निम्नलिखित पुरस्कार और पदक संमुखांकित रचनाओं के लेखकों को अर्पित किए गए—

	पुरस्कार-पदक	पुस्तक	लेखक
क–	रत्नाकर पुरस्कार तथा राधाकृष्णदास पदक	घनानंद और आनंदघन	श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र
ख–	बटुकप्रसाद पुरस्कार तथा सुधाकर पदक	शेखर : एक जीवनी भाग २	श्री अज्ञेय
ग–	द्विवेदी-स्वर्णपदक	जौहर	श्री श्यामनारायण पांडेय

भारत सरकार ने सन् १८९५ वाले ३॥ प्रतिशत सूद के जो कागज चालू किए थे वे गत वर्ष बंद कर दिए गए और उनके बदले ३ प्रतिशत वाले कागज चालू किए। पदक पुरस्कारों की स्थायी-निधियाँ इन्हीं ३॥ प्रतिशत सूदवाले कागजों के रूप में थीं, फलतः उनके परिवर्तित हो जाने पर ब्याज की आय कम हो गई। फिर भी और किसी पुरस्कार पदक के द्रव्य में कमी नहीं करनी पड़ी, केवल माधवीदेवी पुरस्कार, जो संवत् २००५ से प्रति तीसरे वर्ष दिया जानेवाला था, अब संवत् २००६ से प्रति चौथे वर्ष दिया जाया करेगा।

पुस्तकालय

गत वर्ष पुस्तकालय के साधारण सहायकों की संख्या ५२० थी जो इस वर्ष ५७८ है। इस वर्ष ४ नए आजीवन सहायक हुए। आजीवन सहायकों की समस्त संख्या अब २८ है। इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा ३२ पत्र-पत्रिकाएँ पुस्तकालय में अधिक आने लगी हैं। पर्वों तथा आकस्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुट्टियों को छोड़कर पुस्तकालय १५१ दिन तथा वाचनालय १६२ दिन खुला रहा जिसमें पाठकों की दैनिक संख्या लगभग २५० थी एवं प्रतिदिन प्रायः १५० पुस्तकों का आदान-प्रदान होता रहा। इस अवधि में २०७ पुस्तकें भेंट में, ३० पुस्तकें समीक्षार्थ तथा १६६ पुस्तकें परिवर्तन में तथा क्रय करके आईं। ३१ हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त हुए जो विशेष महत्त्व के हैं। जिन सज्जनों तथा संस्थाओं ने पुस्तकों द्वारा पुस्तकालय की सहायता की उनमें लखनऊ का विद्यामंदिर प्रेस और बाँकीपुर का ग्रंथमाला कार्यालय विशेष धन्यवादार्ह हैं। प्रांतीय सरकार ने प्रतिवर्ष की स्थायी सहायता के अतिरिक्त १०००) की विशेष सहायता इस अवधि में पुस्तकालय को दी।

इस वर्ष द्विवेदी-संग्रह की तथा हस्तलिखित पुस्तकों की सूची प्रेस के लिये तैयार कर ली गई। सत्यज्ञान पुस्तकालय की सूची का पहला खंड छप गया है और दूसरा प्रेस में है। सत्यज्ञान पुस्तकालय में पुस्तकों की कुल संख्या अब १३२५ है।

संकेतलिपि-विद्यालय

८ आश्विन को माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री जी ने सभा के संकेतलिपि-विद्यालय का उद्घाटन किया। विद्यालय का कार्य तभी से पूरे वेग से चल रहा है और इस समय शिक्षार्थियों की संख्या ६० से ऊपर हो चुकी है।

गोष्ठी, व्याख्यान, आदि

इस अवधि में सभा की साहित्यगोष्ठी तथा 'प्रसाद'-व्याख्यान-माला के अंतर्गत जो आयोजन हुए तथा सभा की ओर से जिन विशिष्ट दर्शकों और अतिथियों का स्वागत किया गया उनका कालानुक्रम से ब्योरा निम्नलिखित है।

[१] ८ श्रावण को तुलसी-जयंती मनाई गई।
[२] १६ श्रावण को हिंदी-दिवस मनाया गया।
[३] ३ आश्विन को भारतेंदु-जयंती मनाई गई।
[४] १६ कार्तिक को माननीया श्रीमती सरोजिनी नायडू का स्वागत-आयोजन हुआ।
[५] १७ कार्तिक को पी० ई० एन० के काशी-संमेलन के प्रतिनिधियों का स्वागत आयोजन।
[६] १८ कार्तिक को 'भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी हो' के संबंध में श्री वियोगी हरि का व्याख्यान।
[७] ६ मार्गशीर्ष को पं० मधुसूदन शास्त्री का 'काव्य में रस का स्थान' विषय पर व्याख्यान।

प्रकाशन

इस वर्ष निम्नलिखित नवीन ग्रंथ प्रकाशित हुए—

[१] भारतीय वास्तु कला, ले० श्री परमेश्वरीलाल गुप्त।
[२] भाषा-विज्ञान-सार, ले० श्री राममूर्ति मेहरोत्रा।
[३] हिंदी का सरल भाषा-विज्ञान, ले० श्री गोपाललाल खन्ना।
[४] हिंदी की हिमायत क्यों? ले० श्री चंद्रबली पांडेय।
[५] भट्ट-नाटकावली (स्व० श्री बालकृष्ण भट्ट के तीन नाटक), संपादक श्री धनंजय भट्ट।
[६] भट्ट-निबंधमाला (स्व० श्री बालकृष्ण भट्ट के निबंधों का संग्रह) संग्रहकर्त्ता और संपादक श्री धनंजय भट्ट।
[७] हिंदी वालो, सावधान!, ले० श्री रविशंकर शुक्ल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८] हिंदुस्तानी का रहस्य, चंद्रबली पांडेय।
[९] नैशनल लैंग्वेज फॉर इंडिया (अंगरेजी में), ले० श्री चंद्रबली पांडेय।

निम्नलिखित पुस्तकों के नवीन संकरण हुए--

[१०] प्रथम हिंदी-व्याकरण
[११] संक्षिप्त हिंदी-व्याकरण
[१२] हिंदी-निबंधमाला, भाग १
[१३] तुलसी-ग्रंथावली, भाग २
[१४] हिंदी-पद्य-पारिजात, भाग २
[१५] मध्य हिंदी-व्याकरण

निम्नलिखित पुस्तकें छप रही हैं--

[१६] कबीर-ग्रंथावली
[१७] रामचरितमानस
[१८] हिंदी-साहित्य का इतिहास
[१९] रस-मीमांसा
[२०] लंका-दहन
[२१] मुगल-दरबार, भाग ३
[२२] हिंदुस्थानी शिष्टाचार
[२३] बालोपदेश
[२४] खाद-विज्ञान
[२५] गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना
[२६] जीवों की कहानी
[२७] हरद्वार

राजकीय कोश के सामग्री-संग्रह और संपादन का जो कार्य पिछले तीन वर्षों से हो रहा है उसे शीघ्र पूरा करना आवश्यक हो गया है, क्योंकि संयुक्त प्रांत की सरकार ने हिंदी और नागरी को राज-भाषा और राजलिपि स्वीकार करके सभी विभागों में इसके शीघ्र प्रयोग की आज्ञा दे दी है। एतदर्थ उचित व्यवस्था की जा रही है।

हिंदी-शब्दसागर के संशोधन के लिये एक सहायक की नियुक्ति की गई है और यह कार्य भी यथोचित गति से आगे बढ़ रहा है।

हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज

इस वर्ष सभा के दोनों अन्वेषकों --श्री दौलतराम जुयाल और श्री कृष्णकुमार बाजपेयी--ने सुलतानपुर जिले में तीन मास (वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़) खोज का काम किया। जिले का थोड़ा सा पूर्वी भाग छोड़ शेष कार्य समाप्त हो गया है। श्रावण से अन्वेषकों द्वारा संवत् २००२ से लेकर संवत् २००३ तक की खोज की त्रैवार्षिक विवरणिका प्रस्तुत करने का कार्य हो रहा है जो अब समाप्ति पर है।

वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ इन तीन मासों में १०५ ग्रंथों के विवरण लिए गए हैं। इनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से १७ ग्रंथों के रचयिता अज्ञात हैं और शेष ८८ ग्रंथ ७१ रचियताओं द्वारा निर्मित हैं। इस कार्य-काल में जो नए और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्राप्त हुए हैं उनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

संख्या	ग्रंथों के नाम	रचयिताओं के नाम	रचनाकाल	लिपिकाल	विषय
१	वानी और विरहसत	सिध्यादास बाबा	सं० १८१०वि०	१६८०	भक्ति
२	राम-शब्दावली	बाबा झामदास	१८३१	१८३१	,,
३	शब्द	,, केसौदास	×	×	,,
४	शब्द	,, रामप्रसाद	×	×	,,
५	शब्दावली	,, रामसुधिकरनदास	×	×	,,
६	माधवरत्नज्ञान	नवलदास	१८३८	१८५२	,,
७	रामाश्वमेध	हरिसहाय गिरि	१६००	×	रामाश्वमेध
८	अलंकार-मुक्तावली	धीर	×	१८५२	अलंकार
९	कृष्णविलास	शिवराज महापात्र	×	×	शृंगार
१०	हरिविलासाख्य	हरिविलास	×	×	काव्य
११	कविकुलतिलकप्रकाश	महीपति 'महीप'	१७६६	×	रस, अलंकार
१२	दधिलीला	करताराम	×	×	कृष्णलीला
१३	भाषा भक्तचंद्रिका	विश्वनाथसिंह	१८६४	१६०५	काव्य
१४	दुर्गाशतक	विष्णुदत्त महापात्र	१६१७	१६१७	काव्य
१५	रामपंचाध्यायी	कृष्णदास कायस्थ	×	×	काव्य
१६	यूसुफ-जुलेखा	शेखनिसार	१८४७	१६५६	प्रेमकाव्य
१७	प्रेमलीला	मिरजा मुहम्मदजान	×	१६०६	प्रेमकाव्य
१८	अद्भुत रामायण	गोकुल कायस्थ	१६१२	१६३३	काव्य
१६	नीतिरत्नाकर	दिग्विजयसिंह	१६२१	×	नीति
२०	अनुरागविवर्द्धक रामायण	वनदास	×	१६२२	शृंगार

सत्यज्ञान निकेतन

निकेतन के अंतर्गत एक हिंदी-विद्या-मंदिर की स्थापना की गई है जिसका उद्घाटन श्री डा० धीरेंद्र वर्मा के करकमलों से १२ आषाढ़ को हुआ। इसमें अधिकांश पंजाबी शरणार्थियों के बालक शिक्षा प्राप्त करते हैं। सभा की सहायता से ऋषिकेश में भी एक विद्यालय चल रहा है।

स्वामी सत्यदेवजी के निरीक्षण में एक प्रचारक-विद्यालय भी खुलनेवाला है जिसके लिये स्वामीजी के नाम गुरुकुल कांगड़ी पो० आ० में सभा ने १०००) जमा कर दिया है।

सरस्वती-व्याख्यान-माला के अंतर्गत गत आषाढ़ मास में ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, गुरुकुल कांगड़ी, वानप्रस्थाश्रम, ऋषिकेश स्वर्गाश्रम में कुल १६ प्रवचन हुए।

स्वामी सत्यदेव जी के तैलचित्र का उद्घाटन भी श्री डा० धीरेंद्र वर्मा के हाथों १२ आषाढ़ को संपन्न हुआ।

स्फुट

सभा के आग्रह पर प्रांतीय सरकार ने रामचरितमानस की राजापुर और श्रावणकुंज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अयोध्या) वाली प्रतियों के लिये गोदरेज द्वारा निर्मित दो लोहे की चौराग्निन्न (बर्गलर ऐंड फायर प्रूफ) आलमारियाँ प्रदान की हैं। ये आलमारियाँ शीघ्र यथास्थान पहुँच जायँगी और मानस की उक्त दो विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ उनमें सुरक्षित रूप से रख दी जायँगी।

ऊपर 'वार्षिक अधिवेशन' शीर्षक प्रकरण के अंतर्गत जिन तैलचित्रों का उल्लेख हुआ है, उनके अतिरिक्त विश्ववंद्य महात्मा गांधी जी, स्वर्गीय महामना पंडित् मदनमोहन मालवीय जी तथा महात्मा कबीरदास जी के तैल-चित्र एवं श्रद्धेय डाक्टर भगवानदास जी की प्रस्तर-मूर्ति का उद्घाटन भी ८ आश्विन को माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री जी के द्वारा संपन्न हुआ।

स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी की प्रस्तर-मूर्ति भी सभा तैयार करा रही है।

नवीन प्रकाशन

सभा की बहुत सी पुस्तकें जो वर्षों से अप्राप्य थीं और कुछ पाठ्य-पुस्तकें जिनकी प्रतियाँ अत्यधिक माँग के कारण इधर २-३ मास से नहीं थीं वे सब छपकर तैयार हो गई हैं। इधर कई एक महत्त्वपूर्ण नई पुस्तकें भी सभा ने प्रकाशित की हैं। इनके नाम निम्नोक्त हैं —

१—भारतीय वास्तुकला—ले० श्री परमेश्वरी लाल गुप्त, मूल्य २), इसमें नागरिक तथा धार्मिक वास्तु, स्तूप, बिहार, मंदिर, मुसलमानी वास्तुकला आदि विषयों की गंभीर मीमांसा है।

२—हिंदी का सरल भाषा-विज्ञान—ले० श्री गोपाललाल खन्ना, एम. ए. मूल्य २।) यह भाषाशास्त्र संबंधी ग्रंथ है। इसमें भाषा संबंधी सभी पहलुओं को लेकर उसकी विस्तृत विवेचना की गई है और साहित्यिक हिंदी की उपभाषाएँ, भारतीय लिपियों का विकास तथा भाषा-संबंधी प्रागैतिहासिक खोज की पूर्ण मीमांसा की गई है।

३—भाषा विज्ञान-सार—ले० श्रीराममूर्ति मेहरोत्रा, एम. ए., मूल्य २) यह पुस्तक भी उपर्युक्त पुस्तक की ही भाँति है। इसमें भी भाषा-शास्त्र का विवेचन है। ये दोनों पुस्तकें भाषा-शास्त्र के अध्ययन के लिये परम उपादेय हैं।

४—बालोपदेश—ले० श्रीयुत पं० रामानारायण मिश्र। मूल्य ।।) पुस्तक का परिचय उसके नाम से ही व्यक्त है। बालकों को उच्च आदर्श पर ले जाने की इसे सीढ़ी ही समझिए। इसमें बालक-बालिकाओं के जानने योग्य बातें संक्षेप में और सरल भाषा में दी गई हैं।

५—हिंदुस्थानी शिष्टाचार—ले० श्री पं० रामनारायण मिश्र, मूल्य =)।। शिष्टाचार भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। प्रस्तुत पुस्तक में शिष्टाचार संबंधी नियम बतलाए गए हैं। प्रत्येक बालक तथा शिष्टाचार-प्रेमी सज्जन के लिये यह बहुत उपयोगी है।

६—अयोध्या कांड रामायण—यह गो० तुलसीदास के रामचरितमानस के अयोध्याकांड और उनके पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का संग्रह है। कठिन शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणी में दे दिए गए हैं। मूल्य १)

७—हिंदी वालो, सावधान! ले० श्रीरविशंकर शुक्ल, मूल्य ३।।) इस पुस्तक में हिंदी प्रेमियों को हिंदी भाषा पर आए हुए और आनेवाले खतरे से सावधान करनेवाली सामयिक और अनुपम चेतावनी है। हिंदुस्तानी आंदोलन का एकतरफा रूप, हिंदुस्तानीवालों की कारगुजारी, हिंदुस्तानी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों के हथकंडे शीर्षक लेखों द्वारा हिंदुस्तानी की पोल खोली गई है और यह सिद्ध किया गया है हिंदी ही राष्ट्र भाषा हो सकती है।

८—भट्ट निबंध-माला – दो भागों में, मूल्य प्रत्येक भाग का १।), यह स्व० बालकृष्ण जी भट्ट के निबंधों का संग्रह है।

९—भट्ट नाटकावली—मूल्य १) इसमें स्व० भट्टजी के बृहन्नला, वेणुसंहार और जैसा काम वैसा परिणाम नामक नाटक हैं।

१०—अच्छी हिंदी— लेखक बाबू रामचंद्र जी वर्मा। शुद्ध तथा व्याकरणानुमोदित हिंदी लिखने का ज्ञान करानेवाली अकेली पुस्तक। यह पुस्तक प्रायः सभी हिंदी परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रंथ है। मूल्य ३)

११—हिंदी प्रयोग—लेखक वही; व्याकरण का सम्यक् रूपेण ज्ञान करानेवाली मू० १॥);

१२—रूपक रत्नावली—संपादक वही। इसमें संस्कृत के प्रसिद्ध तथा प्राचीन नाटकों का सुंदर भाषा में संग्रह है। मूल्य ३॥)

हिंदी हिंदुस्तानी को लेकर राष्ट्र भाषा के लिये जो प्रतिवाद छिड़ा है उस विषय पर बहुत सी पुस्तकें सभा ने तैयार कराई हैं जिनमें सप्रमाण यह सिद्ध किया गया है कि राष्ट्रभाषा बनने का अधिकार केवल हिंदी भाषा को ही है। [इनके नाम निम्नलिखित हैं]

पंडित चंद्रबली पांडेय लिखित

कचहरी की भाषा और लिपि ॥।); भाषा का प्रश्न ॥।), बिहार में हिंदुस्तानी।); मुल्क की जबान और फाजिल मुसलमान ।=); उर्दू का उद्गम =); मुगल बादशाहों की हिंदी ॥); उर्दू की जबान =); हकीकत उर्दू की जबान की क्या है –); उर्दू की हकीकत क्या है ।=); नेशनल स्क्रिप्ट फॉर इंडिया –); नेशनल लैंगवेज फॉर इंडिया =); हिंदी की हिमायत क्यों ॥); श्रीरविशंकर शुक्ल लिखित—हिंदुस्तानी का रहस्य ।=); पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखित—हिन्दुस्तानी का उद्गम –)

नीचे लिखी अप्राप्य पुस्तकें भी छप गई हैं।

हिंदी निबंधमाला, दो भागों में, प्रत्येक १॥), हिंदी पद्यपारिजात, दो भागों में, १), १॥); करुणा ३॥), ज्ञानयोग, दो भागों में, प्रत्येक २॥); कबीर ग्रंथावली ४), तुलसी ग्रंथावली, भाग २ (गो० तुलसीदासजी के रामचरितमानस के अतिरिक्त एकादश ग्रंथों का संग्रह) मूल्य ४॥), गुरु गोविंद सिंह १॥), सिक्खों का उत्थान-पतन १॥), कीर्त्तिलता १।), संक्षिप्त हिंदी व्याकरण १।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(क) अदालतों से जनता के नाम सभी सम्मन, घोषणाएँ इत्यादि देवनागरी लिपि में जारी की जायँ; और
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) अदालतों में सब लोग अपने प्रार्थनापत्र अथवा शिकायतें देवनागरी लिपि में, और यदि वे हिंदी (नागरी ?) न जानते हों तो फारसी लिपि में दे सकते हैं।

सरकारी दफ्तरों की भाषा

अब से सरकारी कामों और पत्र-व्यवहार के लिये सरकारी दफ्तरों की मान्य भाषा हिंदी होगी, किंतु जब तक इस आदेश को वास्तविक और पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने का विस्तृत प्रबंध नहीं कर लिया जा सकेगा तब तक हिंदी न जाननेवाले सरकारी कर्मचारी और वे, जिनके लिये हिंदी प्रयोग करने का प्रबंध पूरा नहीं हो पाएगा, उस भाषा का प्रयोग कर सकेंगे जिसका व्यवहार वे इस आज्ञा के निकलने के पहले करते रहे हैं।

छपे हुए फार्म वगैरह

पहली दिसंबर १९४७ ई० से सभी फार्म हिंदी में छापे जायँगे। जो फार्म किसी अन्य भाषा में छपे हुए रखे हैं उनका प्रयोग होता रहेगा। किंतु हिंदी जाननेवाले कर्मचारी उन्हें हिंदी में कर लेंगे। सरकारी दफ्तरों के सभी साइनबोर्ड, नोटिस इत्यादि को, जो आजकल हिंदी में नहीं है, यथाशीघ्र हिंदी में कर दिए जाने का आदेश भी दे दिया गया है।

स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ की जीवनी

विज्ञानाचार्य स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ भारत के उन उद्भट विद्वानों में से एक थे जिनका हिंदी-संसार ही नहीं अपितु समस्त संसार ऋणी है। खेद है कि ऐसी महान् आत्मा की अभी तक कोई जीवनी नहीं लिखी गई है। उनकी सब रचनाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। उनका निज का पुस्तकालय, जिसमें प्रकाशित और अप्रकाशित हजारों पुस्तकें थीं, शायद प्रयाग के कायस्थ पाठशाला को दे दिया गया है।

स्वर्गीय गौड़ जी मेरे फुफेरे भाई थे। पूज्य श्री शिवपूजनसहाय के अनुरोध से तथा स्वयं अपनी अंतःप्रेरणा के वशीभूत हो मैं गौड़ जी की जीवनी लिखना चाहता हूँ। इसलिये समाचार-पत्रों के संपादकों, प्रकाशकों, लेखकों तथा गौड़ जी के सहयोगियों, मित्रों, भक्तों सभी से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि वे इस शुभ कर्य में मेरी सहायता करें और जीवनी के योग्य सभी सामग्री—उनके संस्मरण, उनकी कई अवस्थाओं के चित्र, उनकी स्वरचित पुस्तकों की एक एक प्रति, उनकी अप्रकाशित पुस्तकों की सूची तथा उन स्थानों के नाम जहाँ वे सुरक्षित हैं, उनकी जीवनी से संबद्ध छोटे लेखों की प्रतिलिपियाँ, अखबारों की कतरनें, उनके हाथ के लिखे पत्र एवं अन्य चीजें आदि नीचे लिखे पते से भेजने की कृपा करें।

गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'
डी० टी० एस० आफिस, पो० सोनपुर, सारन, बिहार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

स्वर्गीय श्री बालकृष्ण भट्ट की ग्रंथावली और जीवनी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय श्री बालकृष्ण भट्ट का आधुनिक हिंदी-साहित्य के निर्माताओं में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने नाटक, उपन्यास, इतिहास, निबंध, जीवनचरित आदि सभी विषयों में लिखकर हिंदी-साहित्य के भांडार को भरा। अपनी रचनाओं के संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है—"इस बत्तीस साल के 'हिंदी-प्रदीप' की जिल्दों में कितने ही ऐसे उत्तमोत्तम उपन्यास, नाटक तथा अन्यान्य प्रबंध भरे पड़े हैं वे सब यदि पुस्तकाकार छपा दिए जाँय तो निस्संदेह हिंदी-साहित्य के अंग का कुछ न कुछ कोना अवश्य भर जाय।" उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ अभी तक पुस्तकाकार नहीं छपी हैं। उनकी कृतियाँ हिंदी-साहित्य की अमूल्य संपत्ति हैं। 'साहित्य-सुमन', 'सौ अजान और एक सुजान' आदि उनकी जो दो तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं वे इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुईं, इतने वे अधिक स्थानों में पाठ्य पुस्तकों के रूप में स्वीकृत हुईं और उनके इतने अधिक संस्करण निकले जितने इस ढंग के दूसरे संग्रहों के नहीं निकले थे। इधर उनके कुछ ग्रंथ मेरे संपादकत्व में 'हिंदी-साहित्य-संमेलन' से प्रकाशित हुए हैं और कुछ 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा' से। उनकी सभी रचनाएँ संकालित की जाँय, तो अभी कई ग्रंथ और निकल सकते हैं। कठिनाई यह है कि 'हिंदी-प्रदीप' के अनेक अंक भी अब अप्राप्य हैं। जिन महानुभावों के पास 'हिंदी-प्रदीप' के दस पाँच अंक भी पड़े हों वे यदि उन्हें 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा' में भेज दें तो हिंदी-साहित्य के विद्यार्थी उनके द्वारा उस समय के हिंदी-साहित्य की गतिविधि का अध्ययन कर लाभ उठा सकते हैं और उनकी रचनाएँ भी पुस्तक रूप में संकलित की जा सकती हैं। मेरे पास 'हिंदी-प्रदीप' की अधिकांश प्रतियाँ तो हैं पर इतने से ही यह काम पूरा होने का नहीं।

भट्ट जी ने बत्तीस साल के 'हिंदी-प्रदीप' के जिन अंकों में नाटक, उपन्यास, कथा आदि धारावाहिक रूप से लिखे हैं, वे सब के सब मेरे पास नहीं हैं, अतः ये रचनाएँ पूरी नहीं की जा सकीं। इसी प्रकार 'देशी राज्यों का इतिहास', 'प्राचीन नदी, नगर, पर्वत आदि का विवरण', 'प्राचीन कवियों और ग्रंथकारों के परिचय', 'गीतासार समुच्चय' आदि स्तंभों में क्रमशः निकलनेवाली रचनाएँ भी अधूरी रह गई हैं। यदि पुराने साहित्यकार तथा अन्य महानुभाव भी मुझे अपने पास के 'हिंदी-प्रदीप' को देखने का अवसर दें या 'हिंदी-प्रदीप' के मिलने के संबंध में कोई उपाय बता सकें तो उनके अधूरे ग्रंथ पूरे कर दिए जायँ और ऐसे साहित्य-महारथी की कृतियाँ लुप्त होने से बचा ली जाँय।

मेरे पितामह स्वर्गीय श्री बालकृष्ण भट्ट की कोई जीवनी भी अभी नहीं लिखी गई है। मैं उनकी जीवनी लिखना चाहता हूँ। जो महानुभाव मुझे उनके जीवन के संबंध में कुछ परिचय या संस्मरण भेजने की कृपा करेंगे मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ होऊँगा।

४८८, अहियापुर,
इलाहाबाद।

विनीत
धनंजय भट्ट 'सरल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक)

वर्ष ५१—अंक २ [नवीन संस्करण] सं० २००३

श्रावण

विषय-सूची

निर्वाण का स्वरूप—श्री बलदेव उपाध्याय ४९
ईत्सिंग-निर्दिष्ट 'सिद्ध-ग्रंथ'—श्री राजकुमार जैन साहित्याचार्य, काव्य-न्याय-तीर्थ ६२
ग्रामोद्योग में प्रयुक्त ईख-संबंधी शब्दावली—श्री हरिहरप्रसाद गुप्त एम० ए०, एल० टी० ७१
भारत-कला-भवन ७६
समीक्षा ८५
संपादकीय

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पत्रिका' के उद्देश्य

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।
२—हिंदी-साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।
३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।
४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

सहायक

शिवनाथ

सूचना

'सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा की मुख पत्रिका विना मूल्य दी जायगी। पत्रिका के पुराने अंक और सभा द्वारा प्रकाशित अन्य पत्रिका तथा पुस्तकों की एक एक प्रति विशिष्ट सभासद $\frac{1}{2}$ मूल्य में, स्थायी सभासद $\frac{2}{3}$ मूल्य में तथा अन्य प्रकार के सभासद $\frac{3}{4}$ मूल्य में ले सकते हैं। परंतु प्रबंध-समिति को अधिकार होगा कि साधारण सभा की अनुमति से किसी विशेष 'पुस्तक को इस नियम के बाहर रखे।'

मूल्य प्रति अंक २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५१—अंक २ [नवीन संस्करण] श्रावण-सं० २००३

निर्वाण का स्वरूप

श्री बलदेव उपाध्याय

निर्वाण के स्वरूप के विषय में हीनयान और महायान की कल्पनाएँ नितांत भिन्न हैं। यह विषय बौद्ध दर्शन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। निर्वाण के विषय में बौद्ध धर्म के प्रत्येक संप्रदाय का विशिष्ट मत है। निर्वाण भाव रूप है अथवा अभाव रूप, इस विषय को लेकर बौद्ध दर्शन में पर्याप्त मीमांसा की गई है।

(क) हीनयान

निर्वाण का सामान्य रूप

हीनयान मतानुयायी अपने को तीन प्रकार के दुःखों से पीड़ित मानता है—(१) दुःख दुःखता अर्थात् भौतिक और मानसिक कारणों से उत्पन्न होनेवाला क्लेश, (२) संस्कार दुःखता अर्थात् उत्पत्ति तथा विनाशशाली जगत् की वस्तुओं से उत्पन्न होनेवाला क्लेश, (३) विपरिणाम दुःखता अर्थात् सुख को दुःख रूप में परिणत होने से उत्पन्न क्लेश। मनुष्य को इन क्लेशों से कभी छुटकारा नहीं मिलता, चाहे वह कामधातु, रूपधातु अथवा अरूपधातु में ही जीवन क्यों न व्यतीत करता हो। इस दुःख से छुटकारा पाने का उपाय बुद्ध ने स्वयं बतलाया है—आर्य सत्य, सांसारिक पदार्थों की अनित्यता तथा अनात्मता का ज्ञान। अष्टांगिक मार्ग के अनुशीलन से तथा जगत् के पदार्थों में आत्मा का अस्तित्व नहीं है, इस ज्ञान को परिनैष्ठिक रूप देने पर साधक उपरिनिर्दिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लेशों से सदा के लिये मुक्ति पा लेता है। फिर ये क्लेश उसे किसी प्रकार पीड़ित करने के लिये या संसार में बद्ध करने के लिये कथमपि समर्थ नहीं होते। अतः आर्य सत्य के ज्ञान से—सदाचार के अनुष्ठान से—हीनयान-संप्रदाय में कोई भी साधक क्लेशों से निवृत्ति पा लेता है। यही निर्वाण है।

निर्वाण और निरोध की एकता

हीनयान के विविध संप्रदायों में इस विषय को लेकर पर्याप्त मतभेद दिखाई पड़ता है। निकायों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि निर्वाण क्लेशाभाव रूप है। जब क्लेश के आवरण का सर्वथा परिहार हो जाता है तब निर्वाण की अवस्था का जन्म होता है। इसे सुख रूप भी बतलाया गया है; परंतु अधिकतर बौद्ध निकाय निर्वाण को अभावात्मक ही मानते हैं। 'मिलिंदप्रश्न' में निर्वाण के विषय में बड़ी सूक्ष्म विवेचना की गई है। इसका स्पष्ट कथन है कि निरोध हो जाना ही निर्वाण है। संसार के सभी अज्ञानी जीव इंद्रियों और विषयों के उपभोग में लगे रहने के कारण नाना प्रकार के दुःख उठाते हैं। परंतु ज्ञानी आर्य श्रावक इंद्रियों और विषयों के उपभोग में न कभी लगा रहता है और न उसमें आनंद ही लेता है। फलतः उसकी तृष्णा का निरोध हो जाता है। तृष्णा के निरोध के साथ उपादान का—भव का—निरोध उत्पन्न होता है। पुनर्जन्म के बंद होते ही सभी दुःख रुक जाते हैं। इस प्रकार तृष्णादिक क्लेशों का निरोध हो जाना ही निर्वाण है। नागसेन की संमति में निर्वाण के बाद व्यक्तित्व का सर्वथा लोप हो जाता है। जिस प्रकार जलती हुई आग की लपट बुझ जाने पर दिखाई नहीं जा सकती उसी प्रकार निर्वाण प्राप्त हो जाने के बाद वह व्यक्ति दिखाया नहीं जा सकता, क्योंकि उसके व्यक्तित्व को बनाए रखने के लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता। अतः निर्वाण के अनंतर व्यक्तित्व की सत्ता किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती।

निर्वाण की निर्गुणता

संसार में उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं की यह विशेषता है कि उनमें से कुछ तो कर्म के कारण उत्पन्न होती हैं, कुछ हेतु के कारण और कुछ ऋतु के कारण। परंतु निर्वाण ही आकाश के साथ ऐसा पदार्थ है जो न तो कर्म के कारण उत्पन्न होता है, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण। वह तो हेतु से रहित त्रिकालातीत, इंद्रियातीत और अनिर्वचनीय पदार्थ है, जिसे विशुद्ध ज्ञान के द्वारा अर्हत् जान सकता है। निर्वाण के साक्षात् करने के उपाय हैं,

१—मिलिंदप्रश्न, पृष्ठ ६२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु उसे उत्पन्न करने का कोई उपाय नहीं है। साक्षात् करना तथा उत्पन्न करना दोनों भिन्न भिन्न वस्तुएँ हैं। कोई भी मनुष्य अपनी प्राकृतिक शक्ति के बल पर हिमालय तक जा सकता है, परंतु वह लाखों कोशिशें करने पर भी उसे इस स्थान पर नहीं ला सकता, कोई भी मनुष्य साधारण शक्ति के सहारे भी नाव पर चढ़कर समुद्र के इस पार से उस पार तक जा सकता है, परंतु अश्रांत परिश्रम करने पर भी उस पार को इस पार नहीं ला सकता, ठीक यही दशा निर्वाण की भी है। उसके साक्षात्कार करने का मार्ग बताया जा सकता है परंतु उसके उत्पादक हेतु को कोई भी नहीं दिखा सकता[1]। इसका कारण यह है कि निर्वाण निर्गुण है। उसके उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि वह भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों कालों से परे है। अदृश्य होने पर भी, इंद्रियों द्वारा गोचर न किए जाने पर भी उसकी सत्ता है। अर्हत् पद को प्राप्त कर भिक्षु विशुद्ध, ऋजु और आवरणों तथा सांसारिक कामों से रहित मन द्वारा निर्वाण को देखता है। अतः उसकी सत्ता के विषय में किसी प्रकार का अपलाप नहीं किया जा सकता, परंतु निर्गुण होने से वह उत्पादरहित है। उपाय होने से उसका साक्षात्कार अवश्य होता है, परंतु वह स्वयं अनिर्वचनीय पदार्थ है।

निर्वाण की सुखरूपता

नागसेन ने निर्वाण की अवस्था के विषय में भी खूब विचार किया है[2]। महाराज मिलिंद की संमति में निर्वाण में दुःख कुछ न कुछ अवश्य ही विद्यमान रहता है, क्योंकि निर्वाण की खोज करनेवाले नाना प्रकार के संयमों से अपने शरीर, मन तथा इंद्रियों को तप्त किया करते हैं। ये संसार से नाता तोड़कर और इंद्रियों तथा मन की वासनाओं को मारकर बंद कर देते हैं, जिससे शरीर को भी कष्ट होता है और मन को भी। इसी युक्ति के सहारे मिलिंद की दृष्टि से निर्वाण भी दुःख से सना होता है। इसके उत्तर में नागसेन की स्पष्ट संमति है कि निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं रहता। वह तो सुख ही सुख है। राज्य की प्राप्ति होने में नाना प्रकार के क्लेश सहने पड़ते हैं, परंतु स्वयं राज्य-प्राप्ति क्लेश में नहीं है। इसी प्रकार तपस्या ममता, त्याग, इंद्रिय-जय आदि निर्वाण के उपायों में क्लेश है, परंतु स्वयं निर्वाण में क्लेश कहाँ। वह तो महासमुद्र के समान अनंत है। कमल के समान क्लेशों से अलिप्त है। जल के समान सभी क्लेशों की गर्मी को शांत

१—मिलिंदप्रश्न, पृष्ठ ३२९–३३३।

२—मिलिंदप्रश्न (हिंदी अनुवाद), पृष्ठ ३८४–४०३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देता है। काम तृष्णा, भव तृष्णा और विभव तृष्णा की प्यास को बुझा देता है। वह आकाश के समान दश गुणों से युक्त रहता है। न पैदा होता है, न पुराना होता है, न मरता है और न आवागमन को प्राप्त करता है। वह दुर्ज्ञेय, स्वच्छंद तथा अनंत है। अच्छी राह पर चलकर संसार के सभी संस्कारों को अनित्य दुःख तथा अनात्म रूप से देखता हुआ कोई भी व्यक्ति प्रज्ञा से निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है। उसके लिये किसी दिशा का निर्देश नहीं किया जा सकता। महाकवि अश्वघोष का कहना है कि बुझा हुआ दीपक न तो पृथ्वी पर जाता है, न अंतरिक्ष में, न किसी दिशा में, न किसी विदिशा में प्रत्युत स्नेह (तेल) के क्षय होने से वह केवल शांति को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष कहीं नहीं जाता है—न पृथ्वी पर, न अंतरिक्ष में, न किसी दिशा में, न किसी विदिशा में—केवल क्लेश के क्षय हो जाने पर वह शांति प्राप्त कर लेता है—

> दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
> दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शांतिम्।
> तथा कृती निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नांतरिक्षम्।
> दिशं न काञ्चित् विदिशं न काञ्चिद् क्लेशक्षयात् केवलमेति शांतिम्[१]॥

स्थविरवादी मत में निर्वाण की कल्पना

निर्वाण की यही सामान्य कल्पना है। ज्ञान के उदय होने से जब अविद्या के पाश स्वतः छिन्न भिन्न हो जाते हैं तब अर्हत् की अवस्था का नाम निर्वाण है। यही चरम लक्ष्य है जिसके लिये भगवान् तथागत ने अपने धर्म की शिक्षा दी है। निर्वाण इसी लोक में प्राप्त होता है। वेदांत में जीवन्मुक्त पुरुष की जो कल्पना है वही कल्पना निर्वाण-प्राप्त अर्हत् की है। परंतु निर्वाण के स्वरूप के विवेचन में हीनयान तथा महायान संप्रदाय के अनुयायियों में पर्याप्त मतभेद है। सामान्य रीति से कहा जा सकता है कि हीनयान निर्वाण को दुःख का अभाव मात्र मानता है और महायान उसे आनंद रूप बताता है। परंतु हीनयान के संप्रदायों के भीतर भी इसके विषय में भिन्न भिन्न मत हैं। थेरवादियों की दृष्टि से निर्वाण मानसिक तथा भौतिक जीवन का चरम निरोध है। निर्वाण प्राप्त हो जाने के बाद व्यक्तित्व का सर्वथा निरोध हो जाता है। 'निर्वाण' शब्द का अर्थ ही है बुझ जाना। जिस प्रकार दीपक तब तक जलता रहता है जब तक उसमें बत्ती और तेल विद्यमान रहते हैं, उनके नष्ट होते ही दीपक स्वतः शांत हो जाता है, उसी

१—सौंदरनंद, १६।२८, २९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार तृष्णा आदि क्लेशों के विराम ले लेने पर जब यह भौतिक जीवन अपने चरम अवसान पर पहुँच जाता है तब वह निर्वाण कहलाता है।

वैभाषिक मत में निर्वाण

वैभाषिकों के मत इस विषय में स्थविरवादियों के मत के समान ही हैं। वे भी निर्वाण को अभावात्मक मानते हैं। निर्वाण प्रतिसंख्या निरोध है, अर्थात् विशुद्ध प्रज्ञा के सहारे सांसारिक साश्रव धर्मों तथा संस्कारों का जब अंत हो जाता है तब वही निर्वाण कहलाता है[1]। निर्वाण नित्य, असंस्कृत धर्म, स्वतंत्र सत्ता (भाव = वस्तु), पृथक् भूत सत्य पदार्थ (द्रव्य सत्) है[2]। निर्वाण अचेतन अवस्था का सूचक है अथवा चेतन अवस्था का, इस प्रश्न के विषय में वैभाषिकों में ऐकमत्य नहीं दिखाई पड़ता। तिब्बतीय परंपरा से ज्ञात होता है कि कुछ वैभाषिक लोग निर्वाण की प्राप्ति के अवसर पर उस चेतना का सर्वथा निरोध मानते थे जो क्लेशोत्पादक (साश्रव) संस्कारों के द्वारा प्रभावित होती है। इसका अभिप्राय यह कि आश्रवों से किसी प्रकार भी प्रभावित न होनेवाली कोई चेतना अवश्य है जो निर्वाण की प्राप्ति होने के बाद भी विद्यमान रहती है। वैभाषिकों का यह एकांगी मत था। इस मत के माननेवाले कौन थे, यह कहना बहुत ही कठिन है। वैभाषिकों का सामान्य मत यही है कि यह अभावात्मक है। संघभद्र की 'तर्कज्वाला' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि मध्य भारत में वैभाषिकों का एक ऐसा संप्रदाय था जो तथता नामक चतुर्थ असंस्कृत धर्म मानता था। यह तथता वैशेषिकों के अभाव पदार्थ के समान था। निर्वाण की कल्पना के लिये ही अभाव के चारों भेदों—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यंताभाव—की कल्पना की गई थी। यह तथता महायान संप्रदाय में परमार्थ सत्य के लिये प्रयुक्त 'तथता' शब्द से नितांत भिन्न है। इस प्रकार वैभाषिकों के मत में निर्वाण क्लेशाभाव रूप माना जाता है। परंतु अभाव होने पर भी यह सत्तात्मक पदार्थ है। वैभाषिक लोग भी वैशेषिकों के समान पदार्थ मानते थे। भाव पदार्थों के समान अभाव भी स्वतंत्र पदार्थ था।

१—प्रतिसंख्यानमनाश्रवा एव प्रज्ञा गृह्यते, तेन प्रज्ञा विशेषेन प्राप्यो निरोधः इति प्रतिसंख्या निरोधः।—यशोमित्रकृत अभिधर्मकोशव्याख्या, पृष्ठ १६।

२—द्रव्य सन् प्रतिसंख्या निरोधः सत्यचतुष्टयनिर्देशनिर्दिष्टत्वात् मार्गसत्यवत् इति वैभाषिकाः। —वही, पृष्ठ १७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौतांत्रिक मत में निर्वाण का रूप

ये लोग निर्वाण को विशुद्ध ज्ञान के द्वारा उत्पन्न होनेवाला भौतिक जीवन का चरम निरोध मानते थे। इस अवस्था में भौतिक सत्ता किसी प्रकार विद्यमान नहीं रहती। इसी लिये यह उस सत्ता का अभाव माना गया है। परंतु इस विषय में वैभाषिकों से इनका मत भिन्न है। वैभाषिक लोग तो निर्वाण को स्वतः सत्तावान् पदार्थ अर्थात् वस्तु मानते हैं। परंतु सौतांत्रिक लोग निर्वाण को वस्तु नहीं मानते। निर्वाण की प्राप्ति के अनंतर सूक्ष्म चेतना विद्यमान रहती है, जो चरम शांति में डूबी रहती है। भोट देश की परंपरा से पता चलता है कि सौतांत्रिकों की एक ऐसी उपशाखा थी जो निर्वाण को भौतिक सत्ता तथा चेतना का उपशम मानती थी। उसकी दृष्टि में निर्वाण प्राप्त होनेवाले अर्हत् की भौतिक सत्ता का ही सर्वथा निरोध नहीं हो जाता प्रत्युत चेतना का भी विनाश हो जाता है। इस शाखा के मतानुसार निर्वाण के अनंतर कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता। न तो कुछ जीवन शेष रहता है और न कोई चेतना ही बाकी रह जाती है। इस प्रकार यह निर्वाण नितांत अभावात्मक है।

नैयायिकों की मुक्ति से निर्वाण की तुलना

निर्वाण की यह हीनयानी कल्पना ब्राह्मण दार्शनिकों में से न्याय, वैशेषिक की मुक्ति की कल्पना से बिलकुल मिलती जुलती है। गौतम के शब्दों में दुःख से अत्यंत विमोक्ष को अपवर्ग (मुक्ति) कहते हैं[1]। अत्यंत का अर्थ है चरम अवसान, अर्थात् जिससे उपात्त वर्तमान जन्म का परिहार हो जाय तथा भविष्य में अन्य जन्म की उत्पत्ति न हो। गृहीत जन्म का नाश तो होना ही चाहिए साथ ही भविष्य जन्म की अनुत्पत्ति भी आवश्यक है। इन दोनों के सिद्ध होने पर आत्मा दुःख से आत्यंतिक निवृत्ति पा लेती है। जब तक वासना आदि आत्मगुणों का उच्छेद नहीं होता तब तक दुःख की आत्यंतिकी निवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिये आत्मा के नवों विशेष गुणों - बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म तथा संस्कार—का मूलोच्छेद हो जाता है। मुक्त दशा में आत्मा अपने विशुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है और अखिल गुणों से विरहित रहती है। वह छह प्रकार की ऊर्मियों से भी रहित हो जाती है। ऊर्मि का अर्थ है क्लेश। भूख-प्यास प्राण को; लोभ-मोह चित्त को; शीत-आतप शरीर को क्लेशदायक

१—तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।—न्यायसूत्र १।१।२२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से ये छहों ऊर्मि कहे जाते हैं। मुक्त आत्मा इन छहों ऊर्मियों के प्रभाव को पार कर लेती है और सुख-दुःख आदि सांसारिक बंधनों से विमुक्त हो जाती है। उस अवस्था में दुःख के समान सुख का भी अभाव आत्मा में रहता है। जयंत भट्ट[1] ने बहुत विस्तारपूर्वक भाववादी वेदांतियों के मत का खंडन कर मुक्ति के अभाव पक्ष को पुष्ट किया है। मुक्ति में सुख न मानने का प्रधान कारण यह है कि सुख के साथ राग का संबंध सदा लगा रहता है और यह राग है बंधन का कारण। ऐसी अवस्था में मोक्ष को सुखात्मक मानने में बंधन की निवृत्ति कथमपि नहीं हो सकती। इसलिये नैयायिक लोग मुक्ति को दुःख का अभाव रूप ही मानते हैं।

इसी अभावात्मक मोक्ष की कल्पना के कारण वेदांती श्रीहर्ष ने नैयायिकों की बहुत दिल्लगी उड़ाई है। उनका कहना है कि जिन सूत्रकार ने सचेत प्राणियों के लिये ज्ञान, सुख आदि से विरहित शिला रूप प्राप्ति को जीवन का चरम लक्ष्य बताकर उपदेश किया है उनका 'गोतम' नाम शब्दतः ही यथार्थ नहीं है अपितु अर्थतः भी यथार्थ है, वे केवल गो न होकर गोतम (अतिशयेन गौः इति गोतमः = घोर बैल)[2] हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि नैयायिक मुक्ति और हीनयानी निर्वाण की कल्पना एक ही है।

(ख) महायान

हीनयान संप्रदाय के अनुसार निर्वाण का रूप बताया गया है। महायान संप्रदायवाले इस मुक्ति को वास्तविक रूप में निर्वाण मानने को तैयार नहीं हैं। उनकी संमति में इस निर्वाण से केवल क्लेशावरण का ही क्षय होता है, ज्ञेयावरण की सत्ता बनी ही रहती। हीनयान[3] संप्रदाय की दृष्टि में राग-द्वेष की सत्ता पंचस्कंध के रूप से या उससे भिन्न प्रकार से आत्मा की सत्ता मानने के ऊपर अवलंबित है। आत्मा की सत्ता रहने पर ही मनुष्य के हृदय में यज्ञ यागादिक में हिंसा करने की प्रवृत्ति होती है। परलोक में आत्मा को सुख पहुँचाने के लिये ही मनुष्य नाना प्रकार के अकुशल कर्मों का संपादन करता हैं। इसलिए समस्त क्लेश और दोष इसी

१—न्यायमंजरी, भाग २ (चौखंभा संस्करण), पृष्ठ ७५-८१।

२—मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः॥ - नैषधचरित, १७।७५।

३—सत्कायदृष्टिप्रभवानशेषान्, क्लेशाँश्च दोषाँश्च धिया विपश्यन्।
आत्मानमस्या विषयञ्च बुद्धा; योगी करोत्यात्मनिषेधमेव॥
—चंद्रकीर्तिकृत माध्यमकावतार, ६।१२०। माध्यमिकवृत्ति, पृष्ठ ६४० में उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मदृष्टि (सत्काम दृष्टि) के विषम परिणाम हैं। अतः आत्मा का निषेध करना क्लेश-नाश का परम उपाय है। इसी को कहते हैं पुद्गल नैरात्म्य। हीनयान इसी नैरात्म्य को मानता है। परंतु इस नैरात्म्य के ज्ञान से केवल क्लेशावरण का ही क्षय होता है। इसके अतिरिक्त एक दूसरे आवरण की भी सत्ता है जिसे ज्ञेयावरण कहते हैं। 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' में इन दोनों आवरणों का भेद बड़ी कुशलता से दिखाया गया है। नैरात्म्य दो प्रकार का है—(क) पुद्गल नैरात्म्य और (ख) धर्म नैरात्म्य। रागादिक क्लेश आत्मदृष्टि से उत्पन्न होते हैं, अतः पुद्गल नैरात्म्य के ज्ञान से प्राणी सब क्लेशों को छोड़ देता है।

जगत् के पदार्थों के अभाव या उनकी शून्यता के ज्ञान से सच्चे ज्ञान के ऊपर पड़ा आवरण स्वतः छिन्न भिन्न हो जाता है। मोक्ष और सर्वज्ञता की प्राप्ति के लिये इन दोनों आवरणों (क्लेशावरण तथा ज्ञेयावरण) का हटना नितांत आवश्यक है। क्लेश मोक्ष की प्राप्ति के लिये आवरण का काम करते हैं—मुक्ति को रोकते हैं। अतः इस आवरण को दूर हटाने से मुक्ति प्राप्त होती है। ज्ञेयावरण सब ज्ञेय पदार्थों के ऊपर ज्ञान की प्रवृत्ति रोकता है। अतः इस आवरण के दूर हो जाने पर सब वस्तुओं में अप्रतिहत ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, जिससे सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है[1]।

आवरणों का यह द्विविध भेद दार्शनिक दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। महायान संप्रदाय के अनुसार हीनयानी निर्वाण में केवल पहले आवरण (अर्थात् क्लेशावरण) का ही अपनयन होता है। परंतु शून्यता का ज्ञान होने से दूसरे प्रकार के आवरण का भी नाश होता है। जब तक इस दूसरे आवरण का क्षय नहीं होता तब तक वास्तविक निर्वाण हो नहीं सकता। परंतु हीनयानी लोग इस भेद को मानने के लिये तैयार नहीं हैं। उनकी दृष्टि में ज्ञान प्राप्त कर लेने पर अर्हतों का ज्ञान अनावरण हो जाता है; परंतु महायान संप्रदाय की यह कल्पना नितांत मौलिक है। हीनयान संप्रदाय के

१—पुद्गलधर्मनैरात्म्यप्रतिपादनं पुनः क्लेशज्ञेयावरणप्रहाणार्थम्। तथा ह्यात्मदृष्टिप्रभवा रागादयः क्लेशाः पुद्गलनैरात्म्यावबोधश्च सत्कामदृष्टेः प्रतिपक्षत्वात् तत्प्रहाणाय प्रवर्तमानः सर्वक्लेशान् प्रजहाति। धर्मनैरात्म्यज्ञानादपि ज्ञेयावरणप्रतिपक्षत्वात् ज्ञेयावरणं प्रहीयते। क्लेशज्ञेयावरणप्रहाणमपि मोक्षसर्वज्ञत्वाधिगमार्थम्। क्लेशा हि मोक्षप्राप्तेरावरणमिति अतस्तेषु प्रहीणेषु मोक्षोऽधिगम्यते। ज्ञेयावरणमपि सर्वस्मिन् ज्ञेये ज्ञानप्रवृत्तिप्रतिबन्धभूतं अक्लिष्टज्ञानम्। तस्मिन् प्रहीणे सर्वाकारे ज्ञेयेऽसक्तमप्रतिहतं च ज्ञानं प्रवर्तत इत्यतः सर्वज्ञत्वमधिगम्यते ॥—स्थिरमतिकृत और डा० सिल्वन लेवी संपादित त्रिंशिका-विज्ञप्तिभाष्यम्, पृष्ठ १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार अर्हत् पद की प्राप्ति ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। परंतु महायान संप्रदाय के अनुसार बुद्धत्व-प्राप्ति ही जीवन का उद्देश्य है। उद्देश्य की इसी भिन्नता के कारण निर्वाण की कल्पना में भी भेद है।

नागार्जुन का मत

नागार्जुन ने निर्वाण की बहुत विशद परीक्षा 'माध्यमिककारिका' के पचीसवें परिच्छेद में की है। उनके मतानुसार निर्वाण न तो छोड़ा जा सकता है और न प्राप्त किया जाता है। यह न तो उच्छिन्न होनेवाला पदार्थ है और न शाश्वत पदार्थ। यह न तो निरुद्ध है और न उत्पन्न। उत्पत्ति होने पर ही किसी वस्तु का निरोध होता है। यह दोनों से भिन्न है—

अप्रहाणम् असंप्राप्तम् अनुच्छिन्नम् अशाश्वतम्।
अनिरुद्धम् अनुत्पन्नम् एतन्निर्वाणमुच्यते॥

इस कारिका की व्याख्या करते हुए चंद्रकीर्ति का कथन है कि राग के समान निर्वाण का प्रहाण (त्याग) नहीं हो सकता और न सात्त्विक जीवन के फल के समान इसकी प्राप्ति ही संभव है। हीनयानियों के निर्वाण के समान यह नित्य नहीं है। यह स्वभाव से ही उत्पत्ति और विनाशरहित है। और इसका लक्षण शब्दतः निर्वचनीय नहीं है। जब तक कल्पना का साम्राज्य बना हुआ है तब तक निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। महायानियों के अनुसार निर्वाण और संसार में कुछ भी भेद नहीं है। कल्पना-जाल के क्षय होने का नाम ही निर्वाण है। नागार्जुन ने निर्वाण को भाव पदार्थ माननेवाले तथा अभाव पदार्थ माननेवाले दार्शनिकों के मत की आलोचना की है। उनके मत में निर्वाण भाव तथा अभाव दोनों से अतिरिक्त पदार्थ है। यह अनिर्वचनीय है। यह परम तत्त्व है। इसी का नाम भूतकोटि या धर्मधातु है।

दोनों मतों में निर्वाण का सामान्य रूप

हीनयान तथा महायान संप्रदायों के ग्रंथों के अनुशीलन से निर्वाण विषयक सामान्य कल्पना का रूप इस प्रकार का स्थिर होता है—(१) यह शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता (निष्प्रपंच)। यह असंस्कृत धर्म है, अतः न तो इसकी उत्पत्ति है, न इसका विनाश है और न परिवर्तन है। (२) इसकी अनुभूति अपने ही अंदर स्वतः की जा सकती है। इसी को योगाचारी लोग प्रत्यात्मवेद्य कहते हैं और हीनयानी लोग 'पच्चत्तं वेदितब्बं' शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं। (३) यह भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों के बुद्धों के लिये एक है और सम है। (४) मार्ग द्वारा निर्वाण की प्राप्ति होती है। (५) निर्वाण में व्यक्तित्व का सर्वथा निरोध हो जाता है। (६) दोनों मत वाले बुद्ध के ज्ञान तथा शक्ति को लोकोत्तर, अर्हत् के ज्ञान से बहुत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नत मानते हैं। महायानी लोग अर्हत् के निर्वाण को निम्न कोटि का तथा असिद्धावस्था का सूचक मानते हैं। इसे हीनयानी लोग भी स्वीकार करते हैं।

दोनों संप्रदायों में निर्वाण की कल्पना में पार्थक्य

हीनयान	महायान
(१) निर्वाण सत्य, नित्य, दुःखाभाव तथा पवित्र है।	(१) महायानी इसको स्वीकार करता है, केवल दुःखाभाव न मानकर इसे सुख रूप मानता है। वस्तुतः माध्यमिक और योगाचार नित्य, अनित्य, सुख और असुख की कल्पना निर्वाण में नहीं मानते, क्योंकि उनकी दृष्टि में निर्वाण अनिर्वचनीय है।
(२) निर्वाण प्राप्त करने की वस्तु है (प्राप्तम्)।	(२) निर्वाण अप्राप्य है।
(३) निर्वाण भिक्षुओं के ध्यान और ज्ञान के लिये आरंभण (आलंबन) है।	(३) ज्ञाता और ज्ञेय; विषयी और विषय, भिक्षु और निर्वाण में किसी प्रकार का अंतर नहीं है।
(४) निर्वाण लोकोत्तर दशा है। प्राणिमात्र के लिये यह ऐसी सबसे उन्नत दशा है जिसकी कल्पना की जा सकती है।	(४) लोकोत्तर से बढ़कर भी एक दशा होती है जिसे 'लंकावतार सूत्र' में 'लोकोत्तरतम' कहा गया है। यही निर्वाण है, जिसमें सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है। योगाचार के मत में हीनयानी लोग केवल विमुक्तिकाय (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं और महायानी लोग धर्मकाय और सर्वज्ञत्व को प्राप्त करते हैं।
(५) निर्वाण के केवल दो रूप हैं—सोपाधिशेष और निरुपाधिशेष या प्रतिसंख्या निरोध और अप्रतिसंख्या निरोध।	(५) योगाचार के अनुसार निर्वाण के दो भेद और होते हैं—प्रकृतिशुद्ध निर्वाण और अप्रतिष्ठित निर्वाण।

१—'सूत्रालंकार' (पृष्ठ १२६-२७) के अनुसार श्रावक और प्रत्येक बुद्ध मैत्री से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) हीनयानी निर्वाण और संसार की धर्म-समता नहीं मानता।

(६) माध्यमिकों के मतानुसार निर्वाण ही निराकार परमार्थ भूत है। यही एकमात्र सत्ता है। अन्य पदार्थ चित्त के केवल विकल्प मात्र हैं। इस प्रकार निर्वाण और संसार में धर्म-समता रहती है। इन दोनों का संबंध समुद्र और लहरी के समान है।

(७) हीनयानी जगत् के पदार्थों की भी सत्ता मानता है।[१] जगत् उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार निर्वाण।

(७) माध्यमिक और योगाचार दोनों की संमति में निर्वाण अद्वैत है; अर्थात् उसमें ज्ञाता, ज्ञेय; विषय, विषयी; विधि, निषेध का द्वैत किसी प्रकार भी विद्यमान नहीं रहता। यही एक तत्त्व है। जगत् का प्रपंच मायिक तथा मिथ्या है।

(८) हीनयानी को यह द्विविध आवरण की कल्पना मान्य नहीं है। उसकी संमति में क्लेशावरण के अनंतर अर्हत् का ज्ञान आवरणहीन रहता है।

(८) महायान-संप्रदाय में निर्वाण की प्राप्ति को रोकनेवाले दो प्रकार के आवरण माने गए हैं—क्लेशावरण तथा ज्ञेयावरण। उनकी संमति में हीनयानी केवल क्लेशावरण से मुक्त हो सकता है। और वे ही स्वयं दोनों आवरणों से मुक्त हो सकते हैं[१]।

हीन होने के कारण अपना चित्त निर्वाण की प्राप्ति में ही लगाते हैं। परंतु बोधिसत्त्व मैत्री से युक्त होने के कारण निर्वाण में अपना चित्त कभी नहीं लगाता। इसी लिये उसकी सत्ता अप्रतिष्ठित निर्वाण में मानी जाती है। यह निर्वाण बुद्धों के द्वारा ही प्राप्य है। यह अवस्था अर्हत् से बढ़कर है। 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' के अनुसार इस दशा में बुद्ध संसार एवं निर्वाण दोनों की कल्पना से बहुत ऊँचे रहते हैं।

आविष्टानां कृपया न तिष्ठति मनः शमे कृपालूनाम्।
कुत एव लोक सौख्ये स्वजीविते वा भवेत् स्नेहः॥

निःस्नेहानां श्रावकप्रत्येकबुद्धानां सर्वदुःखोपशमे निर्वाणे प्रतिष्ठितं मनः। बोधिसत्त्वानां तु करुणाविष्टत्वात् निर्वाणेऽपि मनः न प्रतिष्ठितम्।

१—हीनयानी निर्वाण का वर्णन कथावत्थु, विसुद्धिमग्ग तथा अभिधम्मकोश के अनुसार है तथा महायानी निर्वाण का वर्णन माध्यमिकवृत्ति लंकावतारसूत्र के अनुसार है। इन दोनों मतों के विशेष विवरण के लिये देखिए दत्तकृत आस्पेक्ट्स आव् महायान बुद्धिज्म, पृष्ठ १९८-२०१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वाण का परिनिष्ठित रूप

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हीनयान मत में जब भिक्षु अर्हत् की दशा प्राप्त कर लेता है तब उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है। साधारणतया प्राणी पूर्वकर्मों के कारण उत्पन्न होनेवाले धर्मों का संघात मात्र है। वह अनंत काल से इस भ्रांति में पड़ा है कि उसके भीतर आत्मा नामक कोई चेतन पदार्थ है। अष्टांगिक मार्ग के सेवन से प्रत्येक व्यक्ति को वस्तुओं की अनित्यता का अनुभव हो जाता है। जिन स्कंधों से उसका शरीर बना हुआ है वे स्कंध विशिष्ट रूप से उसी के नहीं हैं। जगत् के प्रत्येक प्राणी उन्हीं स्कंधों से बने हैं। इस विषय का जब उसे अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है। निर्वाण वह मानसिक दशा है जिसमें भिक्षु जगत् के अनंत प्राणियों के साथ अपना विभेद नहीं कर सकता। उसके व्यक्तित्व का लोप हो जाता है तथा सब प्राणियों के एकत्व की भावना उसके हृदय में जागरित हो जाती है। साधारण रीति से हीनयानी निर्वाण की यही कल्पना है। परंतु महायानी कल्पना इससे नितांत भिन्न है। महायानी लोग धर्मों की सत्ता मानते ही नहीं। वे लोग केवल धर्मकाय या धर्मधातु को ही सत्य मानते हैं। बुद्ध को छोड़कर जितने प्राणी हैं वे सब कल्पना-जाल में पड़े हैं। पुत्र और धन को रखनेवाला व्यक्ति उसी प्रकार भ्रांति में पड़ा हुआ है जिस प्रकार सुख औ शांति के सूचक निर्वाण को पानेवाला हीनयानी अर्हत्। दोनों असत्य में सत्य की भावना कर कल्पना के प्रपंच में पड़े हुए हैं। हीनयान मत में निर्वाण ही परम सत्ता है। उसे छोड़कर जगत् के समस्त पदार्थ कल्पना-प्रसूत हैं। जिस क्षण प्राणी इस बात का अनुभव करने लगता है कि वही सत्य है, संसार निर्वाण से पृथक् नहीं है (अर्थात् दोनों एक ही हैं) उस क्षण वह बुद्धत्व को प्राप्त कर लेता है। इसके लिये केवल अपने आत्मत्व की भावना को ही दूर करने से काम नही चलेगा, प्रत्युत जिस वस्तु को वह देखता है वह पदार्थ भी आत्मशून्य है, इसका ज्ञान भी परमावश्यक है। जब इस ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब महायानी कल्पना के अनुसार निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है।

सांख्य और वेदांत की मुक्ति से निर्वाण की तुलना।

उपरिनिर्दिष्ट निर्वाण की द्विविध कल्पना सांख्य तथा वेदांत की मुक्ति के साथ तुलनीय है। इन दोनों ब्राह्मण दर्शनों की मुक्ति में महान् अंतर है। सांख्य द्वैतवादी है और वेदांत अद्वैतवादी। सांख्य की दृष्टि में प्रकृति और पुरुष को एक मानने से अज्ञान उत्पन्न होता है। वेदांत की दृष्टि में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्व को अनेक समझने में अज्ञान है। सांख्य की प्रक्रिया के अनुसार समाधि के द्वारा बाह्य जगत् के पदार्थों पर ध्यान लगाने से सब विषय धीरे धीरे छूट जाते हैं तथा अस्मिता में उनका अवसान हो जाता है। अस्मिता विषयी और विषय के परस्पर मिश्रण का सूचक है। 'अस्मि' में दो अंश हैं—अस् + मि। अस् = सत्त्व या प्रकृति तथा मि = उत्तम पुरुष = चेतन। 'अस्मि' पुरुष नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें सत्त्व का अंश नहीं है। 'अस्मि' प्रकृति भी नहीं है, क्योंकि जड़ होने से वह 'मि' अर्थात् 'चेतन पुरुष' नहीं हो सकती। इसी लिये 'अस्मि' प्रकृति तथा पुरुष का, विषयी तथा विषय का मिश्रण है। समाधिप्रज्ञा के बल पर हम इस अंश तक पहुँचते हैं। अब यहाँ से पुरुष को प्रकृति से पृथक् हटाने का प्रयत्न होता है। विवेकख्याति ही सांख्य का चरम लक्ष्य है। प्रकृति तथा पुरुष के पृथक्त्व के ज्ञान को विवेकख्याति कहते हैं। 'योगसूत्र' के मतानुसार इसकी सात भूमियाँ हैं। पुरुष धीरे धीरे इन भूमियों को पार करता हुआ सत्त्व से पृथक् होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। सत्त्व तो स्वयं अंधकारमय है। पुरुष का प्रतिबिंब पड़ने के कारण ही वह दिखाई पड़ता है। विवेकख्याति होने पर जब पुरुष का प्रतिबिंब हट जाता है तब सत्त्व, जड़ अंधकारमय हो जाता है। यही सांख्य की मुक्ति है, जिसमें पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रकृति का सर्वथा विनाश हो जाता है। इस मुक्ति की कल्पना में प्रकृति अवश्य रहती है, परंतु पुरुष से उसका किसी प्रकार से संबंध नहीं रहता।

वेदांत में मुक्ति की कल्पना

वेदांत में मुक्ति की कल्पना इससे बढ़कर है। उसमें प्रकृति या माया का कोई भी स्थान नहीं है। माया बिलकुल असत्य पदार्थ है। ब्रह्म ही एक मात्र परमार्थ है। जब इसका ज्ञान हो जाता है तब प्रकृति या माया की सत्ता कथमपि रहती ही नहीं। ब्रह्म ही केवल सत्ता रहता है। उस समय ब्रह्म के सच्चिदानंद स्वरूप का भान होता है। वेदांत की मुक्ति आनंदमयी है। वह नैयायिक तथा सांख्य मुक्ति के समान आनंदविरहित नहीं है। इस प्रकार सांख्य मत में क्लेशावरण का ही क्षय होता है, परंतु वेदांत में ज्ञेयावरण का भी लोप हो जाता है। अतः हीनयानी निर्वाण सांख्य की मुक्ति के समान है और महायानी निर्वाण वेदांत की मुक्ति का प्रतीक है।[1]

१—बौद्ध निर्वाण के विस्तृत तथा प्रामाणिक प्रतिपादन के लिये देखिए—

(अ) डा० ओबरमिलरकृत निर्वान एकार्डिंग टु टिबेटन ट्रेडिशन, आइ० एच० क्यू०, भालूम १०, संख्या २, पृष्ठ २११–२५७।

(आ) डा० दत्तकृत आस्पेक्ट्स आव् महायान बुद्धिज्म, पृष्ठ १२६–२०४।

(इ) श्री बलदेव उपाध्यायकृत भारतीय दर्शन, पृष्ठ २१७–२२७।

(ई) डा० पासिनकृत लेक्चर्स आन निर्वान।

(उ) डा० स्टरबाट्स्कीकृत दि सेंट्रल कांसेप्शन आव् निर्वान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईत्सिंग-निर्दिष्ट 'सिद्ध-ग्रंथ'

श्री राजकुमार जैन साहित्याचार्य, काव्य-न्याय-तीर्थ

[गतांक का शेष]

चतुर्वेदी जी की स्थापनाओं पर विचार

चतुर्वेदी जी की स्थापनाओं का उल्लेख हम पीछे कर आए हैं। यहाँ उन पर भी विचार करना चाहिए।

१, २—एक ओर चतुर्वेदी जी यह लिखते हैं कि ईत्सिंग के मतानुसार 'सिद्ध-ग्रंथ' में जो ३०० श्लोक या १०००० अक्षर बतलाए गए हैं उनकी संख्या ईत्सिंग ने निश्चित रूप से स्वीकार नहीं की है और दूसरी ओर यह भी कि यूनचांग का 'शी-एर्ह्-चांग' शब्द, जिसका अर्थ 'द्वादश भाग' है, 'सिद्ध-रचना' का समकक्ष है, अतः ईत्सिंग-निर्दिष्ट प्रथम व्याकरण-ग्रंथ द्वादशाक्षरी के समान कोई ग्रंथ होना चाहिए। जब चतुर्वेदी जी 'सिद्ध-ग्रंथ' को द्वादशाक्षरी (बारहखड़ीवाली) किताब सिद्ध कर रहे हैं तो वे क्यों भूल रहे हैं कि द्वादशाक्षरी में अक्षरों और श्लोकों की संख्याएँ बिलकुल निश्चित हैं। और जब द्वादशाक्षरी की संख्याएँ निश्चित हैं तब ईत्सिंग की इस स्थापना से कि 'श्लोकों का परिमाण निश्चित नहीं है, कई छोटे, कई बड़े हैं, अतः एकदम निश्चित परिमाण बताना असंभव है', जिससे चतुर्वेदी जी भी सहमत हैं, उनकी द्वादशाक्षरीवाला स्थापना की संगति कैसे बैठेगी। यह भी समझते नहीं बनता कि द्वादशाक्षरीवाली किताब किस आधार पर संस्कृत-व्याकरण-ग्रंथ में परिगणित की जायगी, क्योंकि द्वादशाक्षरी पुस्तक और किसी भी प्रारंभिक संस्कृत-व्याकरण-ग्रंथ में जमीन आसमान का अंतर है।

३, ४—तकाकुसु और वाटर्स ने जो कुछ लिखा है उससे यह ध्वनित होता है कि चीन या जापान की इन वर्णमाला संबंधी पुस्तकों के समान भारत में भी 'सिद्ध-ग्रंथ' ('कातंत्र' संस्कृत-व्याकरण) अन्य संस्कृत-व्याकरण-ग्रंथों की अपेक्षा पहले पढ़ाया जाता था। इसका यह मतलब नहीं है कि वहाँ यदि वर्णमाला सिखाने के लिये वे पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं तो यहाँ (भारत में) भी वर्णमाला सिखानेवाली ही वह पुस्तक होनी चाहिए। मतलब इतने से ही है कि यदि वहाँ की तत्कालीन प्राथमिक व्याकरण-शिक्षण पुस्तकें वे थीं तो भारत की तत्कालीन प्राथमिक व्याकरण-शिक्षण पुस्तक यह, अन्यथा वर्णमाला पुस्तक और संस्कृत-व्याकरण के बीच पाए जानेवाले नियमोपनियमगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर के आधार पर उस समय पढ़ाए जानेवाले संस्कृत-व्याकरण-ग्रंथों में इसे संमिलित न किया जाता।

५—चतुर्वेदी जी 'सिद्धपिटक' या 'सिद्धकोश' नामक जापानी पुस्तक का उल्लेख कर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि ईत्सिंग द्वारा निर्दिष्ट 'सिद्ध-ग्रंथ' उल्लिखित जापानी पुस्तक के समान वर्णमाला-ग्रंथ है। इस संबंध में हम चतुर्वेदी जी से बिलकुल सहमत नहीं हैं; क्योंकि पहले तो प्रस्तुत पुस्तक का स्वरूप ही हमारी समझ में नहीं आ रहा है। चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि इस पुस्तक के अनुसार इसमें १६५५० और तकाकुसु की गणना के अनुसार ६६१३ अक्षर हैं। तकाकुसु की गणना के अनुसार उसी पुस्तक की अक्षर-संख्या के जोड़ में लगभग १०००० का अंतर क्यों पड़ रहा है, यही हमारी समझ के बाहर की बात है। लेकिन चतुर्वेदी जी के लिखे अनुसार प्रस्तुत पुस्तक की १६५५० अक्षर-संख्या मान लेने पर भी (इसलिए कि दूसरी संख्या भी हमारे सामने है) उन्होंने जो अक्षरों की उपयोगिता और अनुपयोगिता के खयाल से उनमें न्यूनाधिक्य कर अक्षरों की १०००० और श्लोकों की ३०० संख्या संभावित की है, वह ठीक नहीं। प्रस्तुत चर्चा संस्कृत-व्याकरण-ग्रंथ की है। अतः जहाँ वैयाकरण 'एकमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः' (अर्थात् वैयाकरणों का यदि एक मात्रा कम लगाने से कहीं काम निकलता है तो उन्हें पुत्रोत्पत्ति के समान आनंद होता है) सिद्धांत के कठोर प्रतिपालक होते हैं वहाँ उनके व्याकरण-ग्रंथ में एकदम ६५५० शब्द अनुपयोगी साबित हो जायँ, यह जँचता नहीं। फिर उस समय के विद्यार्थी 'क्य ख्य ग्य...क ख ग, क्व ख्व ग्व घ्व' जैसे १०००० अर्थशून्य अक्षरों को तो कंठाग्र कर लें और 'सिद्ध-ग्रंथ' ('कातंत्र व्याकरण') के उतने ही अक्षरवाले सार्थक सूत्र न रट सकें, यह उनकी शक्ति से बाहर की बात समझी जाय, यह कहाँ तक ठीक है, इसे चतुर्वेदी जी स्वयं विचारें। कंठस्थ करने की बात हमने इसलिए लिखी है कि उस समय व्याकरण की ये सभी पुस्तकें कंठस्थ करनी पड़ती थीं। 'क्य ख्य ग्य, क ख ग...' जैसे १०००० अक्षरवाली पुस्तक कंठस्थ करने की आवश्यकता ही क्या? 'इंडिया—ह्वाट इट कैन टीच अस' के हिंदी-अनुवाद 'संसार को भारत का संदेश' में इस संबंध में लिखा है—'ईत्सिंग अपने देशवासियों को, जिनमें से बहुत से भारतवर्ष में संस्कृत पढ़ने आए थे, पर इसे बहुत कम पढ़ सके थे, निम्नलिखित उपदेश देता है—

'यदि चीन के मनुष्य भारतवर्ष में विद्याध्ययन के उद्देश्य से जायँ तो उन्हें पहले पहल पूर्वोक्त व्याकरण के ग्रंथों को पढ़ना चाहिए और फिर दूसरे विषय की पुस्तकें। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो उनका परिश्रम व्यर्थ ही जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पुस्तकें कंठस्थ करनी चाहिए। यह बात मेधावी पुरुषों से ही हो सकती है। उन्हें पढ़ने के लिये कनफ्यूसियस जैसा परिश्रमी होना चाहिए।"[१]

इस उद्धारण से स्पष्ट है कि कंठाग्र किया जानेवाला यह 'सिद्ध-ग्रंथ' 'वर्णमातृका' पुस्तक नहीं, अपितु संस्कृत-व्याकरण का ग्रंथ है और वह 'कातंत्र व्याकरण' हैं।

६—चतुर्वेदी जी ने 'कातंत्र व्याकरण' के प्रकरणों के संबंध में एक ऐसा आक्षेप किया है, जिसके जनक वेंकटसुवैया हैं और इसी आधार पर चतुर्वेदी जी भी ईत्सिंग-निर्दिष्ट 'सिद्ध-ग्रंथ' को 'कातंत्र व्याकरण' मानने के लिये तैयार नहीं है। हमारे विचार से यदि वेंकटसुवैया 'कातंत्र व्याकरण' के प्रकरणों की जोड़ाजाड़ी का सवाल न उठाते तो उन्हें चतुर्वेदी जी की ओर से उलटी गंगा बहाने का फतवा न मिलता। लेकिन वेंकटसुवैया की दृष्टि में भी प्रस्तुत सवाल हल करने का संभवत और कोई मार्ग न होगा।

हमारी यह सुदृढ़ धारणा है कि 'कातंत्र व्याकरण' के कर्ता शर्ववर्मन् ने उसे जिस रूप में लिखा था वह ज्यों का त्यों उसी रूप में आज पाया जाता है। विषय की दृष्टि से उसके किसी भी प्रकरण को घटाया बढ़ाया नहीं गया है। फिर उलटी गंगा बहाने का क्या समाधान? हमारे विचार से विभिन्न लेखकों ने 'कातंत्र व्याकरण' के प्रकरणों की विभिन्न संख्या का उल्लेख अपनी अपनी स्वतंत्र दृष्टि के अनुसार किया है। जो विस्तररुचिवाले थे उन्होंने भेद-प्रभेद निकाल कर प्रकरणों को बड़ी संख्या में उपस्थित कर दिया और जो संक्षेपरुचिवाले थे उन्होंने प्रकरणों की संक्षिप्त संख्या उपस्थित करने का प्रयास किया। विषय की दृष्टि से 'कातंत्र व्याकरण' में पहले सत्रह प्रकरण थे, फिर घटाकर बारह प्रकरण कर दिए और फिर तेरह प्रकरण जोड़कर पचीस प्रकरण कर दिए अथच पुनः तीन प्रकरण जोड़कर अट्ठाईस प्रकरण कर दिए, इसकी संभावना नहीं जान पड़ती। इसी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए हम 'कातंत्र व्याकरण' के भिन्न भिन्न प्रकरणों की संभावित संख्या स्पष्ट करना चाहते हैं।

लीबिख द्वारा संपादित 'कातंत्र व्याकरण' के मौलिक रूप में यदि सत्रह प्रकरण हैं तो वे प्रायः इस प्रकार होंगें—संज्ञा, अच्, व्यंजन और विसर्ग संधियों के चार प्रकरण; पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग अजंत के तीन प्रकरण; पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग हलंत के तीन प्रकारण; अव्यय, स्त्री प्रत्यय, कारक, समास, तद्धित, तिङंत और कृदंत का एक एक प्रकरण। इस प्रकार कुल मिलाकर सत्रह प्रकरण होते हैं।

१—पृष्ठ २१७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यूनचांग के मत से इसी ग्रंथ के बारह प्रकरण हैं तो वे संभवतः इस प्रकार होंगे—अच्, व्यंजन और विसर्ग संधियों के तीन प्रकरण; संज्ञा-संधि को संधि-प्रकरणों में संमिलित न किया होगा। अजंत और हलंत का एक एक प्रकरण। शेष अव्यय आदि कृदंतांत के एक एक प्रकरण के हिसाब से सात प्रकरण। इस प्रकार कुल मिलाकर बारह प्रकरण होते हैं। प्रतीत होता है कि यूनचांग संक्षेप-रुचि के थे।

यूनचांग की यह संक्षेप-रुचि लोगों को पसंद न आई होगी, अतः ईत्सिंग के मतानुसार उनके समय में 'कातंत्र व्याकरण' के प्रकरण संभवतः इस तरह स्पष्ट किए गए होंगे—संज्ञा, अच्, प्रकृति, व्यंजन और विसर्ग संधियों के पाँच प्रकरण; अजंत और हलंत के पूर्वोक्त तीन तीन प्रकरण; शेष अव्ययादि कृदंतांत के सात प्रकरण। इस प्रकार अठारह प्रकरण होते हैं।

दुर्गसिंह की 'वृत्ति' नामक ('कातंत्र व्याकरण' की) टीका में पचीस पाद (प्रकरण) हैं।

संधियों के पाँच पाद; अजंत और हलंत के तीन पाद; कारक, समास और तद्धित के एक एक पाद; आख्यात के आठ पाद और कृत् के छह पाद। इस प्रकार कुल पचीस पाद (प्रकरण) होते हैं।

इन पचीस प्रकरणों में अजंत या हलंत किसी एक के तीन प्रकरण और स्पष्ट कर देने पर 'कातंत्र व्याकरण' के अट्ठाईस प्रकरण परिगणित किए गए होंगे।

वेंकटसुब्बैया या चतुर्वेदी जी दोनों ही महाशयों ने यह स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया कि 'कातंत्र व्याकरण' के सत्रह, बारह, अठारह, पचीस और अट्ठाईस प्रकरण कौन कौन हैं। मैंने अपनी कल्पना से इन प्रकरणों की संगति संभावित की है। आशा है चतुर्वेदी जी या वेंकटसुब्बैया इन्हें स्पष्ट करने की कृपा करेंगे। लेकिन जब तक चतुर्वेदी जी इन प्रकरणों को स्पष्ट करते हुए उनके भेद से 'कातंत्र व्याकरण' के मूल विषय में अंतर दिखाने का कष्ट नहीं करेंगे तब तक उन्हें अपने प्रस्तुत आक्षेप को समाहित ही समझना चाहिए।

वेंकटसुब्बैया की स्थापनाओं पर विचार

ईत्सिंग-निर्दिष्ट 'सिद्ध-ग्रंथ' को 'कातंत्र व्याकरण' बतानेवाली वेंकटसुब्बैया की स्थापना से पूर्ण सहमत होते हुए भी हमें उनके कुछ विचार मान्य नहीं हैं।

ख—'कातंत्र व्याकरण' को परंपरया भी हम वेंकटसुब्बैया के लिखे अनुसार महेश्वर-वर-लब्ध होने से महेश्वर-प्रचारित मानने के लिये तैयार नहीं हैं। हाँ, इस संबंध में वेंकटसुब्बैया ने जो यह लिखा है कि 'ग्रंथकार शर्व वर्मन् के नामैकदेश शर्व पद के महेश्वर पर्यायवाची होने के कारण ईत्सिंग ने भ्रांतिवश महेश्वर या शिव का उल्लेख किया है' उससे हम पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहमत हैं। हमारा भी यही अनुमान है कि शर्व वर्मन् के नामैकदेश शर्व पद के महेश्वर-पर्यायवाची होने के कारण या भ्रांतिवश ईत्सिंग ने महेश्वर का उल्लेख कर दिया है। 'कातंत्र'-कार शर्व वर्मन् को अपने व्याकरण-ग्रंथ का प्रचारक मानने में कोई आपत्ति भी नहीं। हर एक व्यक्ति अपनी कृति का प्रचार और प्रसार चाहता है और एतदर्थ प्रयत्नशील भी रहता है।

ग—वेंकटसुबैया ने 'कातंत्र व्याकरण' के भिन्न भिन्न प्रकरणों की संख्या के वैषम्य का किस तरह परिहार किया है और किस तरह वे चतुर्वेदी जी के आक्षेपों के लक्ष्य बने हैं, इसे चतुर्वेदी जी के आक्षेपों का समाधान करते समय हम लिख आए हैं। हम वेंकटसुबैया की प्रकरण संबंधी जोड़ाजाड़ी से सहमत नहीं हैं।

घ—वेंकटसुबैया ने 'सिद्ध-ग्रंथ' के १०००० अक्षर और ३०० श्लोकों का हिसाब एक और प्रकरण जोड़कर ('कातंत्र व्याकरण' के मूल सूत्रों की संख्या को बढ़ाकर) किया है। अतः इस दृष्टि से हम उसे मान्य नहीं कह सकते।

यह तो ईत्सिंग स्वयं स्वीकार कर चुके हैं कि 'सिद्ध-ग्रंथीय' अक्षरों और श्लोकों की संख्या के परिमाण के संबंध में ठीक पता उन्हें न था और चतुर्वेदी जी भी ईत्सिंग का यह मत स्वीकार कर चुके हैं। हमारा भी विश्वास है कि ईत्सिंग ने 'सिद्ध-ग्रंथीय' अक्षरों और श्लोकों की संख्या स्वयं गिनकर निश्चित नहीं की होगी। इसलिए यदि 'सिद्ध-ग्रंथ' ('कातंत्र व्याकरण') के ३०० श्लोकों और १०००० अक्षरों में कुछ न्यूनाधिक्य हो तो वह अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। 'कातंत्र व्याकरण' (दुर्ग सिंह की वृत्ति वाला संस्करण) के सूत्रों की अक्षर-संख्या की गिनती कराने पर वह १०१३६ निकली है। अगर ३२ अक्षरों का एक श्लोक माना जाय तो ३१६ श्लोक और २७ अक्षर बाकी बचते हैं। अतः ईत्सिंग द्वारा अनुमानतः 'सिद्ध-ग्रंथ' ('कातंत्र व्याकरण') की ३०० श्लोक-संख्या और १०००० अक्षर-संख्या बतलाया जाना असंगत नहीं है।

ङ—इस स्थापना में वेंकटसुबैया ने 'कातंत्र व्याकरण' के 'कलाप' और 'कुमार' नामांतर होने का कारण दिखलाया है। भले ही उन्होंने उसे 'कातंत्र व्याकरणोत्पत्तिप्रस्ताव' के आधार पर लिखा हो, लेकिन यह कुछ युक्तसंगत प्रतीत नहीं होता; क्योंकि एक ओर वेंकटसुबैया ईत्सिंग-निर्दिष्ट 'सिद्ध-ग्रंथ' को 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' ('कातंत्र व्याकरण' के सर्वप्रथम सूत्र) के आधार पर बिना किसी के वर से लब्ध व्याकरण सिद्ध करते हैं और दूसरी ओर वे वनमाली द्विजराज के 'कातंत्र व्याकरणोत्पत्तिप्रस्ताव' से सहमत होकर 'कातंत्र' को परंपरया महेश्वर-वर-लब्ध और साक्षात् कार्त्तिकेय की उपासना से लब्ध एवं कुमार के वाहन मयूर के कलाप से संगृहीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार करते हैं। यदि 'कातंत्र व्याकरण' महेश्वर या कुमार के वर से प्राप्त हुआ होता तो 'सिद्धो वर्णसमाम्नाय:' के स्थान पर 'माहेश्वरो वर्णसमाम्नाय:' या 'कौमारो वर्णसमाम्नाय:' लिखा होता, जैसा कि 'लघुसिद्धांत-कौमुदी' में 'इति माहेश्वराणि सूत्राणि' लिखा है। 'कातंत्र व्याकरण' के कर्ता महेश्वर या कुमार के वर से अपने व्याकरण की सृष्टि करते और 'सिद्धो वर्णसमाम्नाय:' लिखकर उनका स्मरण भी न करते यह जँचता नहीं। फिर 'कातंत्र' को महेश्वर प्रचारित भी तो नहीं मान सकते।

मैक्सम्यूलर और तकाकुसु की स्थापनाओं पर विचार

चतुर्वेदी जी के लेखानुसार मैक्सम्यूलर ने 'सिद्ध-ग्रंथ' ('कातंत्र') का महेश्वरकृत चतुर्दश सूत्रों से तादात्म्य स्वीकार किया है, लेकिन चतुर्वेदी जी ने आगे चलकर मैक्सम्यूलर को कीलहार्न का मतानुयायी बतलाया है, वह ठीक प्रमाणित नहीं होता। कीलहार्न 'सिद्ध-ग्रंथ' को 'वर्णमातृका' पुस्तक के समान समझते हैं, और मैक्सम्यूलर ने केवल इतना ही लिखा है कि 'जब बच्चों की छह वर्ष की अवस्था होती है तब उन्हें ४९ अक्षरों और १०००० संयुक्त अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है। इसे वे आधे वर्ष में समाप्त कर लेते हैं। इसमें लगभग ३०० श्लोकों का पाठ होता है और प्रत्येक श्लोक में ३२ अक्षर होते हैं। इस पाठ का प्रचार पहले पहले महेश्वर ने किया था'[1]। प्रस्तुत उद्धरण में मैक्सम्यूलर ने वही बात बताई है जिसका ईत्सिंग प्रतिपादन कर चुके हैं। 'सिद्ध-ग्रंथ' के संबंध में कीलहार्न जहाँ स्पष्ट लिखते हैं कि क्षेमेंद्र के 'मातृकाविवेक' के समान कोई लिपि-ग्रंथ अभिप्रेत है वहाँ मैक्सम्यूलर केवल ईत्सिंग-निर्दिष्ट बात कह कर ही रह जाते हैं। इसलिये चतुर्वेदी जी की यह बात कैसे मान लें कि मैक्सम्यूलर ने भी आगे चलकर कीलहार्न का मत मान लिया ? फिर, 'कातंत्र व्याकरण' के 'सिद्धो वर्णसमाम्नाय:', 'तत्र चतुर्दशादौ स्वरा:' और 'कादीनि व्यञ्जनानि' इन सूत्रों से ४९ असंयुक्त अक्षरों का बोध होता ही है। संयुक्त अक्षरों द्वारा व्याकरण के बोध के लिये लगभग १०००० अक्षर-संख्यावाली पूरी पुस्तक है ही।

हमारे विचार से प्रस्तुत संस्कृत व्याकरण-ग्रंथ का महेश्वरकृत चतुर्दश सूत्रों का तादात्म्य बतलाने में मैक्सम्यूलर का यह आशय रहा होगा कि जिस तरह महेश्वरकृत चतुर्दश सूत्रों में वर्णमाला का प्रतिपादन किया गया है उसी तरह 'सिद्ध-ग्रंथ' के ('कातंत्र व्याकरण') के 'सिद्धो वर्णसमाम्नाय:' में भी। चतुर्दश सूत्रों के विषय के अतिरिक्त इसमें और भी अनेक बातें

१—संसार को भारत का संदेश, पृष्ठ २६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं, यह बात मैक्सम्यूलर स्वीकार ही कर चुके हैं। तकाकुसु का संदेह भी इसी प्रकार है। 'कातंत्र व्याकरण' के 'सिद्धो वर्णसमाम्नाय:' सूत्र से प्रतिपादित वर्णमाला सादृश्य को ध्यान में रखते हुए मैक्सम्यूलर द्वारा प्रस्तुत संस्कृत-व्याकरण-ग्रंथ का महेश्वरकृत चतुर्दश सूत्रों से तादात्म्य बतलाया जाना और तकाकुसु को भी ऐसा ही संदेह होना यही सिद्ध करता है कि वह 'सिद्ध-ग्रंथ' 'कातंत्र व्याकरण' ही होगा; अन्यथा मैक्सम्यूलर और तकाकुसु जैसे विचारकों से इतनी सामान्य गलती नहीं हो सकती थी जिसे चतुर्वेदी जी दिखलाते हैं।

कीलहार्न और बूलर की स्थापना पर विचार

कीलहार्न को 'सिद्ध-ग्रंथ' से क्षेमेंद्रकृत 'मातृकाविवेक' के समान कोई लिपि-ग्रंथ अभिप्रेत है। लेकिन उसे 'सिद्ध' नाम क्यों दिया गया? वह महेश्वर-प्रचारित कैसे है? और ईत्सिंग-निर्दिष्ट अक्षरों तथा श्लोकों की संख्या कहाँ तक किस तरह संभव है? आदि बातों का प्रामाणिक उल्लेख न मिलने से हम इस स्थापना को विचार-कोटि में नहीं रख रहे हैं? यही हाल बूलर की स्थापना का भी है।

'कातंत्र व्याकरण' की प्राचीनता और उसका व्यापक प्रचार

'कातंत्र व्याकरण' बहुत पुराना और सरल व्याकरण है। एक समय था जब यह व्याकरण सारे भारतवर्ष में पढ़ाया जाता था। बंगाल में आज भी इसका खूब प्रचार है। श्री भदंत आनंद कौसल्यायन के तेरह अगस्त सन् '४१ के पत्र से मालूम हुआ कि सिंहल और तिब्बत में अब तक 'कातंत्र' का प्रचार है। श्री नाथूराम 'प्रेमी' के संपादकत्व में प्रकाशित 'जैन-हितैषी' में 'कातंत्र व्याकरण का विदेशों में प्रचार' नामक एक टिप्पणी प्रकाशित हुई है। उसमें लिखा है—"कातंत्र या कलाप संस्कृत का बहुत प्रसिद्ध व्याकरण है। यह अपने समय का इतना सरल व्याकरण था कि इसका प्रचार सारे भारतवर्ष में हो गया था। ......इस व्याकरण ने भारत के बाहर विदेशों में भी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, इसका पता अभी हाल में ही लगा है। मध्य एशिया में पुरातत्त्व-संबंधी बड़ी महत्त्वपूर्ण खोज हो रही है। वहाँ जमीन के भीतर से प्राचीन कूचा नामक राज्य का पता लगा है। उसमें जो प्राचीन साहित्य मिला है उससे मालूम हुआ है कि वहाँ बौद्ध धर्म के अनेक मठ थे और उनमें पढ़ने के लिये 'कातंत्र व्याकरण' का उपयोग किया जाता था। इससे पाठक समझ सकते हैं कि 'कातंत्र व्याकरण' की प्रसिद्धि कितनी और कहाँ तक हुई थी। 'कथासरित्सागर' में 'कातंत्र' के संबंध में एक कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी है। उससे मालूम होता है कि यह व्याकरण महाराज शालिवाहन (शक) को पढ़ाने के लिये उनके मंत्री शर्व वर्मा ने बनाया था"।[1]

बुंदेल खंड में आज से पचास वर्ष पूर्व सर्वत्र पाँच पाटियों और चन्नायकों (चाणक्यन्याय) के पठन-पाठन का प्रचार था। जैसे ही बालक पाँच वर्ष का होता था वैसे ही वह पाँड़े जी के पास भेज दिया जाता और उसकी पढ़ाई 'ओ ना मा सी धम्' (ओं नमः सिद्धम्) से प्रारंभ हो जाती थी। 'ओ ना मा सी धम्' के बाद उसे ४६ अक्षर सिखाए जाते थे और इसके अनंतर पाँच पाटियाँ पढ़ाई जाती थीं। फिर चन्नायक (चाणक्यन्याय) पढ़ाए जाते थे। पाठकों को जानकर आश्चर्य होगा कि पाँच पाटियाँ और कुछ नहीं, 'कातंत्र' की पंचसंधियों का ही रूपांतर हैं। यहाँ हम केवल प्रथम पाटी के कुछ अपभ्रष्ट सूत्र और उनके 'कातंत्रीय' शुद्ध सूत्र दे रहे हैं, जिससे पाँच पाटियों और 'कातंत्र' की पंचसंधियों के अंतर्गत विषय का कुछ संतुलन किया जा सके।

पाटी-सूत्र	'कातंत्र व्याकरण' के सूत्र
सिरदो वरना समामनाया।	सिद्धो वर्णसमाम्नायः।
चत्रो चत्रो दासा, देवी सोरा।	तत्र चतुर्दशादौ स्वराः।
दसें समन्ना।	दश समानाः।
तेखं दुत्या वर्णो, नीसी नीसी वर्णो।	तेषां द्वौ द्वावन्योन्य सवर्णौ।
पूरो ह्रस्वा।	पूर्वो ह्रस्वः।
पारो दुरगा।	परो दीर्घः।
सारो वरना, विरजो नामी।	स्वरोऽवर्णवर्जो नामि।
इकरादीनी, संध की रानी।	एकारादीनि संध्यक्षराणि।
कादैनी काविंजानामी।	कादीनि व्यञ्जनानि।
ते वर्गा पंचु पंचा।	ते वर्गाः पञ्च पञ्च।
वर्गा नामी प्राथं धुत्या सकुचां होचम्।	वर्गाणां प्रथम द्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः।
अनुनासीकौ लिंगानामा।	अनुनासिका ङ ञ ण नमाः।
ऊखमान सखचां यहा।	ऊष्माणः श ष स हाः।
आईंतीं वेसारो झन्या।	अः इति विसर्जनीयः।

जब बुंदेल खंड में ईसा की उन्नीसवीं शती के लगभग पाँच दशक तक 'कातंत्र व्याकरण' का किसी न किसी रूप में पठन-पाठन चलता रहा और

१—भाग ११, अंक ४, पृष्ठ २३७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच छह वर्ष के बालकों को प्रारंभ में यही व्याकरण पढ़ाया जाता रहा तब ईत्सिंग के समकालीन छह वर्ष के विद्यार्थी 'कातंत्र व्याकरण' के अध्ययन के योग्य न समझे जायँ, यह कैसे मान लें ? अतः उल्लिखित पुरातन पठन-पाठन संबंधी परिपाटी पर गंभीर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईत्सिंग के समय में छह वर्ष के बालकों को प्रारंभ में पढ़ाया जानेवाला संस्कृत व्याकरण 'सिद्ध-ग्रंथ' 'कातंत्र' के सिवाय और कोई ग्रंथ न था।

निष्कर्ष

भिन्न भिन्न विद्वानों की स्थापनाओं से सहमत होने पर भी चतुर्वेदी जी अपना कोई निश्चित मत प्रतिष्ठित नहीं कर सके। कभी वे 'सिद्ध-ग्रंथ' को बारह खड़ी वाली किताब बतलाने की ओर झुके हुए मालूम पड़ते हैं और कभी जापानी वर्णमाला पुस्तक जैसी वर्णमाला पुस्तक बतलाने की ओर। अंत में उपरिलिखित आक्षेप-समाधान और प्रमाणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं—

१—ईत्सिंग-निर्दिष्ट संस्कृत व्याकरण का 'सिद्ध-ग्रंथ' 'कातंत्र व्याकरण' है।

२—'कातंत्र' को 'सिद्ध-ग्रंथ' इसलिये कहा कि इसका प्रारंभ 'सिद्धो वर्ण समाम्नायः' से होता है।

३—इसे महेश्वर-प्रचारित इसलिए लिखा कि शर्व वर्मन् का नामैक-देश शर्व पद महेश्वरवाची है। अतः भ्रांतिवश या इसी विचार से ईत्सिंग ने इसे महेश्वर-प्रचारित लिख दिया।

४—अक्षर-संख्या और श्लोक-संख्या के संबंध में ईत्सिंग-निर्दिष्ट संख्याओं से निश्चित तुलना की ही जा चुकी है।

५—इसे वर्णमाला या बारहखड़ी की पुस्तक नहीं कह सकते। इस संबंध में पहले बहुत कुछ विचार किया जा चुका है। फिर भी इसे वर्णमाला या बारहखड़ी की पुस्तक कहने का मतलब यह होगा कि ईत्सिंग-निर्दिष्ट प्रथम संस्कृत-व्याकरण-ग्रंथ संस्कृत का व्याकरण नहीं था; क्योंकि किसी भी संस्कृत-व्याकरण-ग्रंथ में खरियाँ या क, ख, ग्र जैसे संयुक्ताक्षर स्वतंत्र रीति से विद्यार्थियों के व्याकरण-बोध के लिये न तो पाए जाते हैं और न उन्हें रटाकर संस्कृत-व्याकरण का बोध ही कराया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामोद्योग में प्रयुक्त ईख-संबंधी शब्दावली[1]

श्री हरिहरप्रसाद गुप्त एम० ए०, एल० टी०

१—ईख के भेद—ईख को यहाँ ऊख, ऊखि, ऊँख, ऊँखि, उक्खुड़ या उखुड़ कहते हैं। ईख दो प्रकार की पाई जाती है—एक देसी (देशी), छोटकी (छोटी) अथवा पुरानी, दूसरी परदेसी, बड़की (बड़ी) अथवा नइकी या नउकी (नई)। नई ईख को विलायती या सरकारी भी कहते हैं। पुरानी ईख बोने का चलन बहुत कम हो गया है; नई ईख का प्रचार निरंतर बढ़ता जा रहा है। नई ईख पुरानी ईख की अपेक्षा मजगर (मोटी), लमद्दर (लंबी) और रसगर (रसदार) होती है। इसमें गुड़ अधिक पड़ता (तैयार होता) है।

२—पुरानी ईख के भेद—पुरानी ईख के निम्नलिखित भेद पाए जाते हैं—

(१) सरौतिया—यह सरकंडे (सं० शरकांड) के समान होती है। इसका यह नाम इसी आधार पर रखा गया है।

(२) तड़वा या हड़हिया—यह हड्डी सदृश सफेद और कड़ी होती है। इसी सादृश्य के कारण इसका यह नाम पड़ा है।

(३) रेवरा या रेवरवा—यह रेवरा मिठाई की भाँति सफेद, मोटी तथा मीठी होती है।

(४) बड़ौरवा—यह पुरानी ईखों में से सबसे बड़ी होती है। इसके पोर (सं० पर्व) भी बड़े बड़े होते हैं।

(५) मनगो—पुरानी ईखों में से यह सब से अच्छी मानी जाती है। चुहने (चूसने) के लिये यह बहुत अच्छी ईख है। इसका रस स्वादिष्ठ होता है। इसका रंग सफेद होता है, पर गाँठों के पास कजरी (कालापन) होती है।

(६) बजड़हिया—बजड़ा (बाजरा) के पौधे सदृश होती है और बाजरे की फसल के समय इसकी फसल भी होती है। बाजरे की भाँति इसमें भी बाल होती है, जिसके बीज बोए जाते हैं। केवल यही ईख अनाज की भाँति बोई जाती है।

१—यह शब्द-संग्रह अहरौला, तहसील फूलपुर, जिला आजमगढ़ से संबद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) कतारा या केतारा (सं० कांतार)—यह लाल रंग की मोटी ईख है, जो केवल चुही जाती है।

(८) पौंढ़ा (सं० पौंड्र)—यह बहुत मोटी और सफेद रंग की ईख है। यह भी केवल चुहने के काम आती है।

३—नई ईख के भेद—नई ईखों का प्रचार सरकारी कृषि-विभाग द्वारा होता है, अतः प्रतिवर्ष कुछ न कुछ नई ईखें प्रचलित होती रहती हैं। कृषि-विभाग में इन ईखों का नंबर होता है, किंतु गाँव की साधारण जनता इनके नंबरों से परिचित नहीं होती। गाँववाले इन ईखों का नाम इनके रूप-गुण के आधार पर अपनी रुचि के अनुकूल रख लेते हैं। नीचे इस समय प्रचलित नई ईखों के नाम उनके सरकारी नंबर के साथ दिए जाते हैं—

(१) नरमा—नं० २९०—यह नरम होने के कारण चुहने और पेरने दोनों के लिये उपयुक्त होती है।

(२) भुवहिया—नं० ३१२—यह भी अच्छी ईखों में से एक है। इसमें सरपत की भाँति भूआ फूटता है।

(३) ललको—नं० ३३१—इसका छिलका कुछ लाल होता है।

(४) पियरकी—नं० ३७०—इसका छिलका पीला होता है।

(५) लकड़हिया—नं० ३१३—यह लकड़ी की भाँति कड़ी होती है।

(६) कइनहिया—नं० १०९—यह बाँस की कइन सदृश पतली होती है।

(७) बाँस गन्ना या बाँस फारम—नं० ४२१—इसका छिलका बाँस की तरह होता है। सरकारी फार्म (खेती) द्वारा प्राप्त होने के कारण इसके नाम के साथ 'फारम' शब्द जुट गया है।

(८) कलेक्टरहिया या कलेटरिया—नं० २१२—कलक्टर साहब द्वारा प्रचार किए जाने के कारण यह नाम पड़ गया है।

(९) सुसइटिया या सुरसतिया—कोआपरेटिव सोसायटी (सहयोग समिति) द्वारा प्रचार किए जाने के कारण यह नाम पड़ गया है।

(१०) दुलहिनियाँ—इस ईख का गेंड़ा[1] दुलहिन के घूँघट की भाँति सामने लटका रहता है, इसी लिये इसका यह नाम पड़ा।

१—गेंड़ा (सं० कांड)—ईख के सिरे की पत्तियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) दलबादर—इसकी गाँठों के आस-पास कालापन होता है, जो बादल के समूह की समता करता है।

४—ईख का खेत—ईख के खेत के निम्नलिखित भेद हैं—

(१) पेड़ी या पेड़ा रखा खेत—ईख कट जाने पर जड़ के समूह का जो भाग जमीन में रह जाता है उसे पेड़ी कहते हैं, इसी आधार पर उस खेत को भी पेड़ी ही कहते हैं। पेड़ी जब नहीं जोती जाती और ईख की फसल दुबारा काटने के निमित्त वह ज्यों की त्यों छोड़ दी जाती है तब इसे पेड़ी राखब (रखना) कहते हैं और ऐसे खेत को पेड़ी या पेड़ा रखा हुआ खेत।

(२) अठवाँसा खेत—जो खेत आषाढ़ से माघ तक अर्थात् आठ मास बोने के लिये कमाया (तैयार किया) जाता है उसे अठवाँसा कहते हैं। उखाव—जो खेत खरीफ की फसल कट जाने के बाद ईख के लिये तैयार किया जाता है उसे उखाव कहते हैं।

रबी की फसल कट जाने पर भी चैत में कुछ लोग ईख बोते हैं। ऐसे खेतों का कोई नाम नहीं है। इन खेतों में केरौटा[1] कुछ अच्छा होता है। जवनार[2] खराब होता है, क्योंकि उस खेत में कुछ सत्त (सत्त्व) नहीं रह जाता।

५—बीया बिकने की माप—बोने के लिये जो ईख प्रयोग में आती है उसे बीया (बीज) कहते हैं। छोटकी ईख का बीया नाप कर बिकता है। इसके नापने के पैमाने का नाम औला है। एक औला चार पाई के बराबर होता है और एक पाई सौ हाथ के बराबर। एक हाथ की माप के लिये एक लकड़ी ले लेते हैं, जो वस्तुतः एक हाथ चार अंगुल लंबी रखी जाती है। एक पाई (चार सौ हाथ) ईख नप जाने पर इसे गाही(पाँच) में गिन डालते हैं। जितनी गाही ईख इस पाई में होती है उतनी ईखों का ढेर लगाते हैं। प्रत्येक ढेर एक पाई के बराबर समझा जाता है।

६—बीया की दृष्टि से ईख का जरखर (जड़ का भाग) तथा अँगोर (आगे का भाग) अच्छा होता है, क्योंकि इनमें गाँठें नजदीक नजदीक होती हैं और इनका आँखा जल्दी जमता है। बिचखड़ (बीच का भाग) देर में जमता है।

१—केरौटा—केराव (सं० कलाय=मटर) कटा हुआ खेत।

२—जवनार—जौ (सं० यव) कटा हुआ खेत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—**बोहवाला तथा अखरी बीया**—बीया बोने के दो नियम हैं। कुछ लोग उसे भिगोकर बोते हैं और कुछ लोग बिना भिगोए। भिगोकर बोनेवाले लोग बीये को कुछ समय के लिये पानी में बोह (डुबो) देते हैं, इस बीये को बोहवाला और जो बिना भिगोए बोया जाता है उसे अखरी बीया कहते हैं। बोहवाला बीया जल्दी जमता है।

८—**पताँड़ या पैंड़**—बोने के लिये बीये को गँड़ास, गँड़सा, गंड़ास या गंड़ासा (एक औजार) से टुकड़े टुकड़े काट डालते हैं। एक टुकड़े में साधारणतः तीन चार गाँठें होती हैं। इन टुकड़ों को पताँड़ या पैंड़ कहते हैं और इनके काटने की क्रिया को पताँड़ मारब (मारना) कहते हैं। पताँड़ जब तुरंत बोना नहीं होता तब उसे एक खाता (गड्ढा) में नीचे ऊपर पतई (पत्ती) रखकर ढक देते हैं। इस पर पानी का छिड़काव किया करते हैं, जिससे तरी बनी रहे। इस प्रकार पताँड़ रखने को खाता मारब (मारना) कहते हैं।

९—**पताँड़ बोने के लिये हल**—ईख बोने के लिये चौड़ी मुर्हीं[1] होनी चाहिए। मुर्हीं को चकली (चौड़ी) बनाने के लिये हल में बरही (हेंगा में प्रयोग में आनेवाली लगभग पाँच हाथ लंबी रस्सी) या ईख के गेंड़ा को चोटी की तरह गुहकर बाँधते हैं, इस बँधे हुए सामान को लेदी कहते हैं। लेदी बँधे हुए हल को पहिया कहते हैं। जो साधारण किसान हैं वे इसी हल से काम चला लेते हैं, किंतु अच्छी बोआई के लिये तीन हल होने चाहिए। इनमें से एक हल बोई हुई मुर्हीं को भाठने के लिये होता है। इसे भठुआ हल कहते हैं। यह हल सबसे आगे चलता है। दूसरा हल खेत छीनकर (काटकर) नई मुर्हीं बनाता है। इसे छिनुआ हल कहते हैं। सबसे पीछे पहिया हल चलता है, जिसका कार्य छिनुआ द्वारा बनाई हुई मुर्हीं को झारकर (साफ़ कर) चकली बनाना है। पहिया घूम जाने के बाद उसी मुर्हीं में पताँड़ बोया जाता है।

१०—**बोने का ढंग**—पताँड़ बोने का ढंग यह है कि एक आदमी मुर्हीं में पताँड़ थोड़ी थोड़ी दूर पर गिराता चला जाता है और दूसरा आदमी उसे समुचित ढंग से गाड़ता जाता है। एक पताँड़ से दूसरे पताँड़ में साधारणतः पाँव आँतर[2] होता है। जब बीया कमजोर

१—मुर्हीं—हल द्वारा जो निशान बनता है उसे साधारणतः कूँड़ कहते हैं। किंतु ईख बोने में इसे मुर्हीं कहते हैं। कूँड़ की अपेक्षा मुर्हीं गहरी होती है।

२—पाँव-आँतर—पैर के तलवे की लंबाई के बराबर अंतर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है अथवा खेत में दूँवके (दीमक) का भय रहता है तब एक पताँड़ के खोंप (किनारा) को दूसरे पताँड़ के खोंप से सटाकर बोते हैं, इस बोआई को खोंपाजोर बोआई कहते हैं। बो जाने के बाद खेत हेंगा दिया जाता है।

११—गोड़ाई के भेद—(१) पताँड़ बैठाना—पताँड़ बो जाने के दो तीन दिन बाद पहली गोड़ाई होती है। इस गोड़ाई का मुख्य ध्येय यह है कि जो पताँड़ बोते समय शीघ्रता में टेढ़े मेढ़े हो गए हों उन्हें उखाड़कर फिर से बैठाना। इसी लिये इस गोड़ाई को पताँड़ बैठाइब (बैठाना) कहते हैं। यह गोड़ाई बेंड़े-बेंड़े की जाती है। यदि खड़े-खड़े गोड़ाई की जाय, जिस प्रकार खेत बोया रहता है, तो कुदाल की चोट से पताँड़ के चिर जाने का भय रहता है; बेंड़े-बेंड़े गोड़ने से यह भय नहीं रहता और लाभ यह होता है कि जो पताँड़ समुचित गहराई पर नहीं रहते या जो टेढ़े मेढ़े हो जाते हैं वे कुदाल से बझकर (फँसकर) ऊपर निकल आते हैं। फिर उन्हें कुदाल से गड्ढा करके यथास्थान गाड़ दिया जाता है।

१२—(२) धुरियाना—इसी प्रकार प्रति सप्ताह जब तक ईख जम नहीं आती, गोड़ाई बराबर होती रहती है। इस गोड़ाई को धुरियाइब (धुरियाना) कहते हैं, क्योंकि इससे खेत की मिट्टी धूल सदृश मुलायम हो जाती है, जिससे अँखुआ निकलने में सुविधा होती है। लगभग दो सप्ताह में अँखुआ बाहर आ जाता है। जब तक यह भीतर रहता है तब तक इसे अंधा कहते हैं और बाहर निकल आने पर इसे पोय कहते हैं। यह गोड़ाई बहुत सावधानी से करनी पड़ती है, नहीं तो अंधा कट जाय। पोय निकल आने पर प्रत्येक मुर्ही अलग अलग दिखाई पड़ने लगती है, इस अवस्था को मुर्हियाब (मुर्हियाना) कहते हैं। कभी कभी कुछ पताँड़ नहीं जमते। इस प्रकार पताँड़ मार जाने (नष्ट हो जाने) पर उनकी जगह दूसरा पताँड़ गाड़ते हैं, जिसे खिरपब (खिरपना) कहते हैं।

१३—सिंचाई के भेद—कभी कभी खेत के तारू (भीतरी भाग) में ओद (नमी) की कमी के कारण पताँड़ बराबर से नहीं जमता, तब हाथा[1] से सींच देते हैं, जिसे हथियाइब कहते हैं। यदि पानी की अधिक आवश्यकता ज्ञात होती है तो खेत में कियारी (सं० केदार) बनाकर सिंचाई करते हैं, जिसे कियारी देब (देना) कहते हैं।

१—हाथा—लकड़ी का एक हथियार जिससे पानी उलीचते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु इस समय हलुक (हलकी) या छलकउला (छलकनेवाली) कियारी दी जाती है।

१४—जब पताँड़ बराबर से जम आता है तब पूरी सिंचाई करते हैं, जिसे गम्हीर (गँभीर) कियारी कहते हैं और इस प्रकार सींचने को गहि के कियारी देब अथवा चभोर के कियारी देब (देना) कहते हैं। इस प्रकार की सिंचाई में पानी डुड़ही (कियारी की मेंड़) बराबर भरा जाता है और अपने सुखे पानी रेंगने के कारण कियारी खूब पानी सोखती है। गरमी में जब पछुवाँ (पश्चिमी) हवा चलने लगती है तब इस प्रकार की सिंचाई की विशेष आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि इस समय खेत की आँत में तरी चाहिए अन्यथा पौधे को धौंका (लू) मार देता है। मृगशिरा नक्षत्र (आषाढ़ के आसपास) की तपन भी पौधे को सुखा देती है। कहावत है—मृगडाह जब तपै अँगारा, सोइ किसान जो पोय सँभारा, अर्थात् मृगशिरा की अग्नि वर्षा से जिस किसान ने पोय की रक्षा कर ली वही सच्चा किसान है। मृगशिरा के उपरांत आर्द्रा में खेत की खूब गोड़ाई की जाती है। पुष्य (श्रावण के आसपास) की तपन ईख के लिये अच्छी मानी जाती है। कहावत है—जब तपे पुक्ख, तब होय उक्ख। ईख के लिये सिंचाई और गोड़ाई का कितना महत्त्व है, यह इस कहावत से जाना जा सकता है—तीन कियारी तेरह गोड़, तब ताका हौदा की ओर, अर्थात् तीन बार कियारी देने और तेरह बार गोड़ने पर ही रस के लिये हौदे की ओर देखना चाहिए।

१५—सिंचाई के बाद की गोड़ाई के भेद—सिंचाई के बाद की पतली गोड़ाई को कियारी गिराइब (कियारी गिराना) कहते हैं, क्योंकि इस गोड़ाई में खेत की बनी हुई कियारी बिगाड़ दी जाती है। इसके उपरांत होनेवाली दूसरी गोड़ाई को एकरसा गोड़ाई कहते हैं। यह गोड़ाई खेत रसगर (सरस) रहने पर ही, कियारी गिराने के दूसरे तीसरे दिन, की जाती है। वस्तुतः एकरसा गोड़ाई के लिये तभी मिट्टी योग्य समझी जाती है जब वह ऐसी लदफद (गीली) न हो कि गोड़ते समय कुदाल में लग जाय और न ऐसी सूखी ही रहे कि गोड़ने पर कड़ा ढेला निकले। मिट्टी बरकल (न गीली न सूखी) अच्छी मानी जाती है, जो गोड़ते समय बराबर से टूटकर भुरभुरी होती जाय। इस प्रकार एकरसा गोड़ाई बहुत ही समुचित समय पर होनी चाहिए। यदि देर हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो खेत का ताव बिगड़ जाता है, खेत का ओद (नमी) फँ जाने (नष्ट होने) पर खेत बईठ (बैठ=दब) जाता है और मिट्टी ठनक जाती है। ऐसे खेत को एकरसा खेत कहते हैं, अर्थात् खेत की एकरसा गोड़ाई समय पर नहीं हुई। एकरसा गोड़ाई के बाद होनेवाली गोड़ाइयों को पूर्ववत् धुरियाइब कहते हैं। इनका प्रयोजन यही है कि ये खेत की मिट्टी को नरम बनाए रखें। प्रत्येक बार गोड़ने के पश्चात् खेत हेंगा दिया जाता है जिससे नमी बनी रहे किंतु जब पोय बड़ी और कड़ी हो जाती है और हेंगाने से उसके टूटने का भय रहता है तब उसे गोड़कर पैर से पैंतर देते हैं। इसे पैंतरब (पैंतरना) याल तिआइब (लतियाना) कहते हैं।

१६—पौधे का विकास—एक पोय से जब कुछ और नई नई पोयें निकलती हैं तब इसे ईख में बियास आइब[1] (आना) कहते हैं, जिसका मतलब यह है कि ईख विस्तार कर रही है। पोय बढ़कर जब करेर (कड़ी) मनाने लगती (हो जाती) है तब उसे डँड़वत[2] कहते हैं। एक पताँड़ में जितनी ईखें पैदा होती हैं उतनी के समूह को थान[3] कहते हैं। ईख बढ़ जाने पर उसके गिर जाने का भय रहता है इसलिये मूहीं चढ़ा देते हैं अर्थात् जिस मूहिं में ईख बोई रहती है अगल बगल से मिट्टी निकालकर उसे ऊँची कर देते हैं। ऐसा करने से जड़ मजबूत हो जाती है। जब ईखें गिर जाती हैं तब थोड़ी थोड़ी ईखों को उठाकर गेंड़ा की सहायता से एक में बाँध देते हैं, जिसे जुटियाइब (जुटियाना=जुटाना) कहते हैं।

१७—ईख के रोग—ईख को हानि पहुँचानेवाली निम्नलिखित बातें होती हैं—

(१) कहा जाता है कि चित्रा नक्षत्र (कार्त्तिक के लगभग) की वर्षा से ईख का गेंड़ा मारा जाता है—चित्रा के बरसले तीन क नास साली सक्कर मास, अर्थात् चित्रा की वर्षा से शालि (धान), शक्कर (ईख) तथा मास (सं० माष=उड़द) को हानि पहुँचती है।

(२) कारो—एक प्रकार का कीड़ा है जो ईख के गेंड़े को हानि पहुँचाता है। इसके लगने से गेंड़ा धीरे धीरे सूख जाता है।

१—बियास=(सं० व्यास) विस्तार।

२—डँड़वत=(सं० दंडवत्) दंड के समान।

३—थान=(सं० स्थान) जगह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) फनगी (फतिंगा)—फनगी का प्रकोप जिस वर्ष होता है उस वर्ष ईख की खेती को बहुत हानि पहुँचती है। कहते हैं, जिस वर्ष टिड्डी का प्रकोप होता है उसी वर्ष ये भी दिखाई पड़ती हैं। इनकी उत्पत्ति टिड्डी के बीट से बताई जाती है। ये वर्षा में उत्पन्न होती हैं और वर्षा के अंत के साथ ही इनका भी अंत हो जाता है। ये भी गेंड़े को खा जाती हैं।

(४) कानी—कुछ ईखें भीतर लाल पड़ जाती है, उनका रस दूषित हो जाता है और उनमें रस भी कम हो जाता है। ऐसी ईखों को कानी, कनहीं या किनहीं कहते हैं।

(५) लवाही—इस रोग में ईख सूखकर चिचुक (सिकुड़) जाती है और इसका रंग लाख सदृश हो जाता है।

(६) पिहिंका—इस रोग में सींका (पौधे के बीच की नरम और पतली पत्ती) सूख जाता है। कहते हैं, यह फागुन में बोई हुई ईख में अधिक लगता है।

(७) देंवका (दीमक)—ये पताँड़ को खा जाते हैं। इनसे बचाने के लिये पताँड़ को हींग के घोल में डुबोकर बोते हैं।

१८—ईख का नेवान—कार्त्तिक शुक्ल एकादशी या डिठवन एकादशी (देवोत्थान एकादशी) को नवा या नेवान (नवान्न) होता है। इसे गाँठ फोरने की सायत भी कहते हैं। इस दिन से ईख का चुहना आरंभ हो जाता है। चुहने के लिये एक बार में जितनी ईख दाँत से काटी जाती है, उसे गुल्ला कहते हैं। ईख चुहने के लिये जब चाकू से छोटे छोटे टुकड़ों में काटी जाती है तब टुकड़े को गेंड़ी कहते हैं। ईख चुहने के बाद जो फोक थूका जाता है उसे चेंफ कहते हैं। अच्छी और मोटी ईख को मुसगंडा कहते हैं।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत-कला-भवन

[प्रगति-वृत्तांत]

अर्थ-संचय—भारत-कला-भवन की बढ़ी हुई ख्याति और लोकप्रियता के परिणाम-स्वरूप पिछले छह महीनों में दे तथा सरकारी सहायता द्वारा उसे अच्छी आय हुई है। दानवीर श्री घनश्यामदास बिड़ला ने, निम्नांकित सद्भावनापूर्वक, १०,०००) का स्तुत्य एवं अनुकरणीय महादान देकर कला-भवन की प्रस्तावित विशाल इमारत के चंदे का श्रीगणेश किया है—

'आपके उद्देश्य से मुझे पूर्ण सहानुभूति है जिसके परिचय स्वरूप १०,०००) भेज रहा हूँ। आपने जो चंदा आरंभ किया है उसकी पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ।'

इधर अन्य जो दान प्राप्त हुए हैं उनमें से विशेष उल्लेखनीय है मुगल सिक्कों का संग्रह प्राप्त करने के लिये श्री कृष्णकुमार बिड़ला का ३०००) का दान और राजस्थानी चित्रों को क्रय करने के लिये श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला का २५००) का दान। इन दोनों संग्रहों का उल्लेख नीचे होगा। चंदे से कुल आय २५६४७) हुई जिससे कला-भवन के संग्रह की विशेष अभिवृद्धि हुई है।

इनके अतिरिक्त प्रांतीय सरकार ने १०,०००) की विशेष सहायता गुप्तकालीन स्वर्ण-मुद्राओं का एक अद्वितीय संग्रह प्राप्त करने के लिये दी है। ३५००) की वार्षिक आवर्तित सहायता भी इसी बीच सरकार द्वारा प्राप्त हुई।

योजनाएँ—कला-भवन के संग्रह को जनता के लिये अधिक उपादेय बनाने की दृष्टि से इधर कुछ नई योजनाएँ बनाई गई हैं। कला-भवन का संग्रह इतना प्रशस्त हो गया है कि वर्तमान भवन के संकुचित स्थान में उसका समुचित प्रदर्शन कर सकना असंभव सा है। संग्रहालय के लिये अब एक नवीन प्रशस्त भवन का निर्माण नितांत आवश्यक हो गया है। 'सभा' द्वारा प्राप्त वर्तमान भवन की उत्तरवाली भूमि पर नवीन भवन निर्माण करवाने की योजना अब लगभग पूर्ण हो गई है। अनुमान है कि इसमें लगभग पाँच लाख व्यय होगा। इस रकम को इकट्ठा करने के लिये अपील निकाली जा चुकी है और सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला ने इस चंदे का श्रीगणेश १०,०००) के स्तुत्य दान द्वारा किया है।

कला-भवन को स्थापित हुए पचीस वर्ष १९४५ में पूरे हो चुके हैं, अतएव १९४७ के आरंभिक महीनों में इसकी रजत-जयंती मनाने का निश्चय किया गया है। विचार है कि जयंती-उत्सव विशेष उत्साह के साथ और काफी बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैमाने पर मनाया जाय। इस समारोह का उद्घाटन करने के लिये पं० जवाहर लाल नेहरू से अनुरोध किया गया है। इस अवसर पर देश के प्रमुख विद्वान्, नेता और कलाकार आमंत्रित किए जायँगे और संगीत-समाज, कवि-समाज, चित्रकार-संमेलन आदि का आयोजन कलाकारों के समादरार्थ और शिक्षित जनता में सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करने के हेतु किया जायगा। विद्वानों की एक परिषद् आगे की सांस्कृतिक योजना बनाने के लिये भी बैठेगी। कला-भवन की श्रेष्ठ सामग्रियाँ, जो इधर प्राप्त हुई हैं और जिनका प्रदर्शन अभी तक नहीं हुआ है, पहली बार गैलरियों में प्रदर्शन के हेतु रखी जायँगी।

कला-भवन के तत्त्वावधान में एक सर्वांग सुंदर त्रैमासिक कला-पत्रिका भी निकालने का निश्चय किया गया है। इसमें भारतीय कला तथा संस्कृति की नवीन और मौलिक मीमांसा करनेवाले गंभीर निबंधों का समावेश रहेगा और यह अनेक रंगीन तथा सादे चित्रों से विभूषित रहेगी। डा० मोतीचंद्र और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल सरीखे विद्वानों ने इसके संपादक-मंडल में रहना स्वीकार किया है। इसकी प्रकाशन-संबंधी योजना बनकर तैयार है। कागज के कोटे के लिये प्रांतीय सरकार को आवेदनपत्र दिया गया है। कागज की व्यवस्था होते ही इसका प्रकाशन आरंभ हो जायगा।

संग्रहाभिवृद्धि—पिछले वर्षों में कला-भवन के चित्र, मृण्मूर्ति आदि विभाग यथेष्ट समुन्नत हुए हैं, किंतु मुद्रा-विभाग कुछ उपेक्षित सा रहा। इसलिए इधर इस विभाग की अभिवृद्धि के लिये विशेष प्रयत्न किया गया। इधर पाँच छह महीनों में प्राचीन मुद्राओं के अनेक महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ उदाहरण कला-भवन ने प्राप्त किए हैं। भारतीय मुद्रा-प्रसार के प्राचीनतम चलन के कई उत्कृष्ट उदाहरण कला-भवन में आए हैं। इन्हें आहत सिक्के (पंच मार्क क्वायंस) कहते हैं, क्योंकि ये सिक्के धातु के टुकड़ों पर सुबें से छाप मारकर तैयार किए जाते थे। इनका समय ईसा से कई शती पहले का है। ये सिक्के विभिन्न आकृतियों के होते थे, जैसे—छिछली-कटोरीनुमा, झुकाए हुए छड़ की तरह, गोल अथवा अन्य अनेक टेढ़ी मेढ़ी आकृतियाँ। इनमें से सभी आकृतिवाले अनेक प्रतिनिधि उदाहरण कला-भवन को प्राप्त हुए हैं। भारत की प्राचीन मुद्रा-पद्धति की जानकारी प्राप्त करने के लिये इन सिक्कों से यथेष्ट सहायता मिल सकती है।

भारतीय कला तथा संस्कृति के चरम उत्कर्षपूर्ण गुप्त-काल के भी अनेक सिक्के कला-भवन में आए हैं। दिग्विजेता सम्राट् समुद्रगुप्त का धनुर्धर-भाँतिवाला एक सिक्का हमें मिला है, जिसकी विशेषता यह है कि इस का लेख अब तक मिले सिक्कों के लेख से भिन्न है। इसकी दशा बहुत अच्छी है और इस पर अंकित आकृति और लेख बिलकुल स्पष्ट हैं। समुद्रगुप्त का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अश्वमेधीय सिक्का भी मिला है। यह सिक्का उस दिग्विजेता ने अश्वमेध यज्ञ करने के अवसर पर चलाया था। इसमें एक तरफ घोड़े की आकृति है और दूसरी ओर चँवर लिए खड़ी सम्राज्ञी दिखलाई गई हैं। इस भाँति का सिक्का प्रायः दुर्लभ है। इसकी भी अवस्था बहुत अच्छी है।

इनके अतिरिक्त सिक्कों का एक बहुत बड़ा संग्रह अभी अभी कला-भवन ने १४,८००) में लिया है, जो अनेक दृष्टियों से अपूर्व है। इस विशाल संग्रह में १६०० सोने, चाँदी तथा ताँबे के मुगल सिक्के तो हैं ही, लगभग १३०० अन्य अनेक राजवंशों के सिक्के भी हैं, जिनमें मुख्य ये हैं—आहत, इंडो-ग्रीक, कुषाण, शक क्षत्रप, गुप्त तथा दिल्ली, बंगाल, मालवा, गुजरात और जौनपुर के सुलतान, दकन के बहमनी सुलतान एवं अवध के नवाब। ये सभी सिक्के बहुत अच्छी हालत में हैं और इनमें से कितने ही अद्वितीय और दुर्लभ हैं। इस प्रकार इस संग्रह द्वारा कला-भवन में भारतीय सिक्कों के व्यापक और परिपूर्ण संग्रह की पक्की नीवँ पड़ गई है। इस संग्रह का विस्तृत विवरण अगले प्रगति-वृत्तांत में दिया जायगा।

चित्रों के संग्रह में भी इधर विशेष अभिवृद्धि हुई है। दानवीर श्रीलक्ष्मीनिवास बिड़ला की उदारता से कला-भवन को उनसठ चित्रों का एक बहुमूल्य संग्रह प्राप्त हुआ है। इनमें के अधिकांश चित्र राजस्थानी शैली के हैं, विशेषकर इस शैली के अंतर्गत मेवाड़ कलम के। इन चित्रों में दो चित्र आरंभिक राजस्थानी शैली के हैं जिनमें अपभ्रंश शैली की स्पष्ट झलक है। इसमें का एक चित्र यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है (चित्र-संख्या १)। मेवाड़ शैली के जो चित्र इस संग्रह में प्राप्त हुए हैं, वे सभी उत्कृष्ट कोटि के हैं और उनमें से अधिकांश कई बड़ी चित्र-मालिकाओं के स्फुट चित्र हैं। मेवाड़ शैली की विशेषता यह है कि इसमें घटनाओं और भावों का चित्रण बहुत प्रकृत और सूक्ष्म ब्योरों का क्रमिक विकास दिखलाते हुए होता है। गहरे और तर रंग तथा पर्याप्त व्यापार (ऐक्शन) इन चित्रों के प्राण होते हैं। 'भागवत' की कथा को रंगों में प्रदर्शित करनेवाली एक चित्र-मालिका के कई चित्र इस संग्रह में प्राप्त हुए हैं जिनमें से एक की प्रतिकृति यहाँ दी जाती है (चित्र-संख्या २)। इसमें पूतना-वध का दृश्य अंकित है। पूतना के अंकन में उसकी पीड़ा और कंस के प्रति उसके आक्रोश का भाव स्पष्ट लक्षित है। वहाँ की परिस्थिति का चित्रण भी बहुत ही प्रकृत हुआ है। जमुना को उच्छलित दिखाकर चित्रकार ने प्रकृत की आकुलता भी दरसाई है।

तीसरा चित्र भी इसी मेवाड़ शैली की नायिका-भेद-संबंधी एक चित्र-मालिका का है। इसका आधार निम्नलिखित सवैया है, जो चित्र के सिरे पर अंकित है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूझति एक बियोग बधू बिधि ताहि तें अंग अनंग बिघातो।
देव समान उभै अवलोकति पावक जानि उदै ससि रातो।
तू कहि पंखि बखानु बिवेकु कि तोहि समान दुहूँ दिसि नातो।
बोलिबो बैन बिचारि चकोर है इंदु अँगार में को अति तातो॥

इस चित्र में आँखों को परितृप्त करनेवाली एक अद्भुत रमणीयता है। पृथ्वी की प्रज्वलित अग्नि से अधिक आकाश के चंद्रमा द्वारा संतप्त नायिका का चकोर के प्रति प्रश्न करने का भाव बहुत स्वाभाविक बन पड़ा है।

राजस्थानी चित्रों के अतिरिक्त इस संग्रह में पहाड़ी शैली के पूर्ण यौवन काल के कई रेखा-चित्र, बूँदी के महाराज रामसिंह द्वारा बनवाए हुए दस-बारह चित्र और जैन भजनोंवाले तीन चित्रित पत्रे भी हैं। इस संग्रह में महत्त्व की एक और वस्तु प्राप्त हुई है। वह है 'तूतीनामा' नाम का एक फारसी कथा-ग्रंथ जिसमें अकबर-कालीन लोक-शैली में कथानक की विविध घटनाओं को चित्रित करते हुए चौबीस चित्र अंकित हैं। मुगल लोक-शैली के चित्र बहुत कम मिलते हैं, इस दृष्टि से यह विशेष महत्त्व की है। इस पुस्तक के दो चित्र यहाँ (चित्र-संख्या ४) दिए जाते हैं।

सिक्कों तथा चित्रों के अतिरिक्त कुछ और फुटकल सामग्री भी पिछले छह महीनों में कला-भवन में आई है जिसमें से उल्लेखनीय ये हैं—फारसी खुशखत के नमूनों की एक पुस्तक, जरी का एक शाल और एक कश्मीरी चोगा।

इसलाम धर्म में चित्र-अंकन करना वर्जित है, अतः मुसलमानों की कला-प्रवृत्ति सुंदर लिपि में सुलेख लिखने की ओर विशेष उन्मुख हुई है। फारसी की नस्तालीक लिपि का आरंभ पंद्रहवीं शती में ईरान में हुआ। इस लिपि के अक्षरों में गोलाई अधिक होती है और यह अकबर आदि मुगल बादशाहों को बहुत प्रिय थी। कला-भवन को भिन्न भिन्न सुलेखकों के लिखे हुए तीस पटलोंवाला एक संग्रह इधर प्राप्त हुआ है। इस पुस्तक में अनेक प्रख्यात लिपिकारों की एक से एक सुंदर सुलिपियाँ तो हैं ही साथ ही इसके औरंगजेब-कालीन संग्रहकर्ता ने, जो स्वयं एक सुलिपिकार था, बड़े सुंदर अक्षरों में एक भूमिका लिखी है जिससे लिपि के महत्त्व और इतिहास का ज्ञान होता है। पुस्तक के पटलों तथा हाशियों को नक्काशों ने बहुत कारीगरी के साथ नेत्र-रंजक फूल-बूटों से अलंकृत किया है।

काशी के श्री आमोदकुमार वर्मन ने एक जरी का शाल कला-भवन को भेंट किया है जो अठारहवीं शती का है। कश्मीर में तो जरी के शाल बनते ही थे और उसके नमूने भी बहुत मिलते हैं, किंतु कश्मीरी जरी के शालों का काम बुनावटी नहीं, पशमीने पर कलाबत्तू से काढ़ा और टाँका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ होता था। लेकिन वर्मन जी द्वारा प्राप्त शाल सिंध का है और इस पर बुनावटी जरी का सुंदर काम है। इस कौशल के नमूने बहुत कम मिलते हैं।

श्री श्रीप्रकाश जी ने कश्मीरी काम का एक अच्छा चोगा भेंट किया है जो आरंभिक उन्नीसवीं शती के कश्मीरी कारीगरी का अच्छा नमूना है। इस चोगे में सफेद पशमीने पर काला बुनावटी काम है। इसके संबंध में यह भी महत्त्व की बात है कि यह चोगा दाता के प्रपिता, प्रसिद्ध डा० भगवान्दास जी के पिता, श्री माधवदास जी के पहनने का है।

इस बीच कला-भवन के सहायक संग्रहाध्यक्ष श्री विजयकृष्ण के कई लेख 'माडर्न रिव्यू' आदि में प्रकाशित हुए और उप-संग्रहाध्यक्ष श्री उदयशंकर शास्त्री ने पुनः कौशांबी का एक चक्कर लगाया जहाँ से वे बहुत सी मृण्मूर्तियाँ, सिक्के, मुहरें, मनके आदि ले आए।

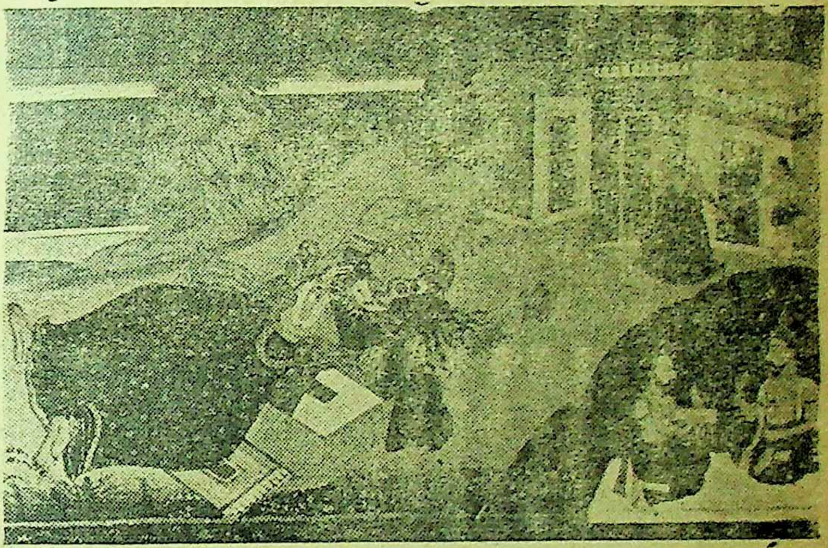

चित्र-संख्या २

चित्र-संख्या ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

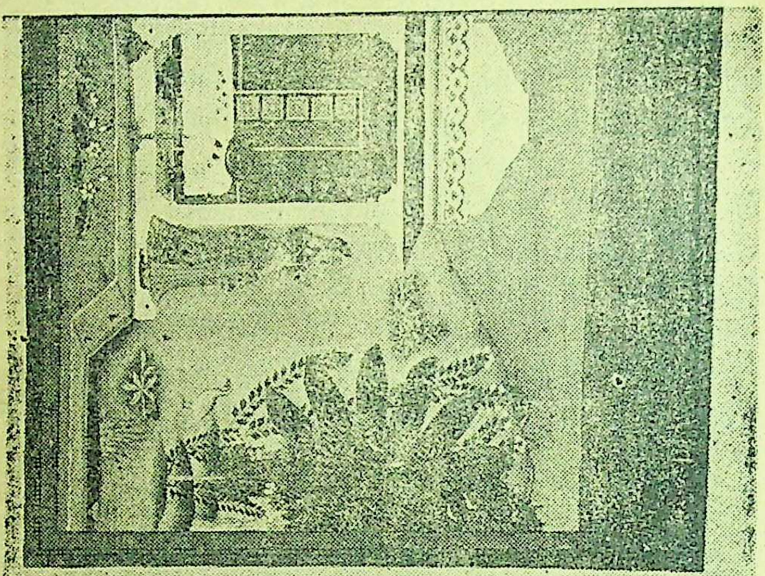

चित्र-संख्या ३

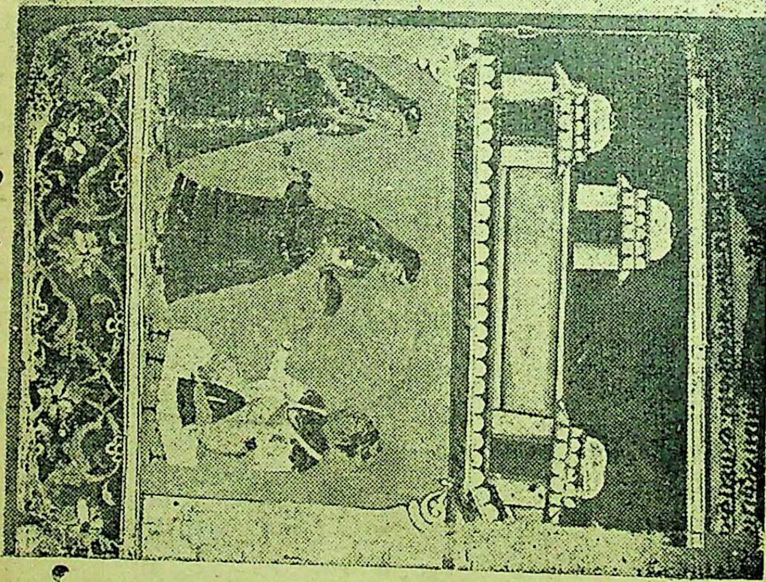

चित्र-संख्या १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

छायालोक—लेखक-श्री शंभूनाथ सिंह। प्रकाशक—युग मंदिर, उन्नाव। मूल्य २)।

श्री शंभूनाथ सिंह हिंदी के उदीयमान कवियों में से श्रेष्ठ हैं। प्रस्तुत संग्रह के पहले उनका एक और काव्य-संग्रह 'रूपरश्मि' नाम से प्रकाशित हो चुका है। उसमें जीवन और जगत् के सौंदर्य-पक्ष की रंगीनी चित्रित हुई है। यौवन के रंगीन सपनों की शीतल छाया (जिन्हें वास्तविकता में परिणत होने का प्रायः अवसर नहीं मिलता) विरहजन्य वेदना की विवृति के रूप में निरूपित होती है। 'छायालोक' की कविताओं का वर्ण्य विषय विरह-निवेदन ही है।

विरह-निवेदन के नाम पर आज के युग की दुहाई देनेवालों को नाक-भौं सिकोड़ने की आवश्यकता नहीं। काव्य का निरपेक्ष स्वरूप भी होता है, जिसमें एकांत शुद्ध भावों का विशेष मूल्य है। प्रगीतों की तो यह अपनी विशेषता है। अनुभूति की तीव्रता कवि का विशेष गुण होता है। भावुकता और अनुभूति की तीव्रता इस [काव्य-संग्रह] का मेरुदंड है। एक बार इसे आद्यंत पढ़ जाने पर कवि की अनुभूतियों की सचाई का पता लग जाता है। सबसे बढ़कर नई बात यह है कि इसकी प्रभावान्विति स्थूल ऐंद्रिक विकारों में बिलकुल सहायक नहीं होती, श्री नरेंद्र शर्मा और अंचल के कुछ काव्य-संग्रहों में जिसका प्राधान्य है। प्रस्तुत संग्रह का कवि ऐसे स्खलन से मुक्त है। यहाँ कवि के साथ एकरस होने पर हम काव्य-रस का आस्वादन करते हैं।

भाग्य-विपर्यय का मधुर संकेत करते हुए संग्रह के प्रथम और सर्वाधिक प्रसिद्ध गीत 'समय की शिला पर मधुर चित्र कितने किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए' से पुस्तक का प्रारंभ होता है। संग्रह के अन्य गीतों में अनुभूति की तीव्रता ने कल्पना को दबा दिया है, परंतु इस गीत में इसका समुचित संनिवेश हुआ है। प्रकृति के खंड चित्रों के सहारे दो विरोधी भावों का चित्र उपस्थित कर एक चिरंतन सत्य का उद्घाटन किया गया है। इसके अनंतर विरह-निवेदन का प्रवाह चलता है। न कवि को आराधना का आधार प्राप्त होता है, न उसे किनारे का ही पता लगता है, जहाँ 'रूपकिरन' मुसकरा रही है। उसके स्वरों में हाहाकार, निराशा, अभाव और उपालंभ है। कहीं उसे इतनी निराशा होती है कि वह गा उठता है—'सपने भी मुझको भूल गए।' इस प्रकार संग्रह में विप्रलंभ शृंगार के निराशाजनक गंभीर वातावरण का प्राधान्य है। परंतु कवि की भाव-धारा अंधकार की ओर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश की ओर प्रवाहित हुई है। "इन भूमियों में मन पलायन के लिये नहीं, शक्ति संचय के लिये रमा है।" भूमिका की इस बात की सार्थकता दो-एक गीतों में मिलती है। किंतु प्रकाश की किरण-रेखाएँ विरल तथा मंद हैं। हमें कवि के विश्वास के प्रति आशंका इसलिये नहीं हो रही है कि निराशा की अभिव्यक्ति के बाद उसका बोझिल मानस स्वस्थ तरंगों का निर्माण कर सकेगा। प्यार उसके लिये वरदान सिद्ध हुआ है। उसे ज्योति की एक क्षीण रेखा के दर्शन होते हैं।

संग्रह में वियोगी व्यक्ति की अनेक अंतर्दशाओं के चित्र बहुत ही सरल और स्वाभाविकतापूर्वक प्रस्तुत किए गए हैं। वियोगी कवि अपनी मनोव्यथाओं को प्रायः दो रूपों में व्यक्त करता है। वह या तो अपने मन के भीतर अनेक उद्भावनाएँ करता है या प्रिय को संबोधित कर उपालंभ इत्यादि के रूप में बहुत सी बातें कह जाता है। इसमें दोनों पद्धतियों का सहारा लिया गया है।

प्रिय के रूप के वर्णन में उसके प्रभावों की ओर ही ध्यान दिया गया है। उसकी भावभंगियों, स्थूल मांसल चित्रणों को छोड़ दिया। कवि ने अच्छा ही किया कि इससे विकृति का परिहार हो गया है।

श्री शंभूनाथ सिंह सजग कलाकार हैं। कलाकार की सजगता की कसौटी उसकी व्यंजना-प्रणाली है। कलाकार अपने भावों की अभिव्यक्ति पूरी तरह से कर तो दे किंतु उससे मनोविकारों को असामाजिक उत्तेजना न मिले, यही उसकी विशेषता होनी चाहिए। 'छायालोक' की कविताएँ अधिक अंशों में इसका निर्वाह करती हैं। इसकी भाषा सरस, सरल तथा स्वाभाविक है। कृत्रिमता कहीं छू भी नहीं गई है। लगता है कवि के सरल हृदय से निष्कपट रूप से पंक्तियाँ निकल पड़ी हैं। विरोधाभास का उपयोग कवि ने खूब किया है। आगे कुछ पंक्तियाँ प्रमाण-स्वरूप उद्धृत की जाती हैं—'मुक्ति-कारा की अचल प्राचीर,' 'हँसते रुदन का करे कौन विश्वास,' 'बँधा मुक्त मन मैं, भरा रिक्त घन मैं; चिरंतन विरह से बना चिर मिलन मैं।' अठारहवें गीत में विरोधमास की सुंदर छटा दिखलाई पड़ती है।

अनुभूतियों की तीव्रता तथा अभिव्यक्ति की सचाई दोनों दृष्टियों से 'छायालोक' प्रभावशाली है। संगीतात्मक गुणों के संनिवेश से उसकी प्रभावोत्पादकता में और वृद्धि हो गई है। कवि के विश्वास के साथ हम भी विश्वास करते हैं कि वह भविष्य में अपनी भाव-भूमि का अधिक विस्तार लेकर हमारे संमुख आएगा। ऐसा करने में उसे अपनी प्रकृति की पूरी परख भी रखनी चाहिए।

बच्चनसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110739

भारतीय विचारधारा में आशावाद—लेखक डाक्टर मोहम्मद हफ़ीज सैयद एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रोफ़ेसर प्रयाग विश्वविद्यालय। मूल्य १॥)।

इस कठोर सांप्रदायिक संघर्ष के युग में ऐसी पुस्तक पढ़कर इसके विद्वान् लेखक की सहिष्णुता और विद्वत्ता से यह विश्वास हो जाता है कि एक संप्रदाय के लोग दूसरे संप्रदाय के आचार-विचार और साहित्य का अध्ययन करें, तो परस्पर सहानुभूति और सद्भावना स्थापित हो सकती है।

बहुत से पश्चिमी विद्वानों का खयाल है कि भारतीय धर्म मनुष्य की प्रवृत्तियों को निराशावाद की ओर ले जाता है और यह सिखलाता है कि संसार में दुःख ही दुःख है तथा मनुष्य का जीवन एक मायाजाल है। विद्वान लेखक ने सप्रमाण हिंदू-धर्म, बौद्ध मत और जैन-धर्म के ग्रंथों के आधार पर इस भ्रम को निर्मूल सिद्ध किया है। उन्होंने पुनर्जन्म, आश्रम-चतुष्टय, कर्मवाद आदि सिद्धांतों का गंभीर और सविस्तर विवेचन कर बताया है कि आर्य निराशावादी हो ही नहीं सकते। बात भी ठीक ही है। हिंदुओं के जितने तीर्थ, व्रत और त्योहार हैं, सबका मूल सिद्धांत प्राकृतिक है। उनमें जो दोष आ गए हैं उनका कारण है सामाजिक विकृति, न कि सैद्धांतिक अनियमता है।

मूल पुस्तक अँगरेजी में लिखी गई है। इसका हिंदी-अनुवाद श्री छंगालाल मालवीय एम० ए० ने किया है।

भूमिका-लेखक रावराजा डा० श्यामविहारी मिश्र हैं।

राम

बंदी—रचयिता—श्री रघुवीरशरण 'मित्र'। प्रकाशक—अ० भा० राष्ट्रीय साहित्य प्रकाशन परिषद्, मेरठ। मूल्य ३)।

५६ स्फुट कविताओं के इस संग्रह में कवि ने बंदी-रामजीवन की अनुभूतियों को सचाई से सँजोया है, किंतु पुस्तक के प्रारंभ में दी जानेवाली 'अनुभूति' में उसने जिस अलंकृत गद्य का उपयोग किया है वह कुछ अस्वाभाविक है। आज की प्रगतिशील धारा के अनुकूल इस संग्रह की कतिपय कविताओं में मुक्त छंद की सुगमता को आश्रय मिला है। संग्रह की बहुसंख्यक कविताएँ युगधर्म से अनुप्राणित हैं, और कुछ ऐसी भी हैं जिनमें सामाजिक परिस्थितियों का सजीव चित्रण तथा कवि की निजी दार्शनिकता का रहस्योद्घाटन है। कहीं कहीं कवि ने कथानक भी खड़ा किया है, ऐसी कविताएँ विशेष आकर्षक बन पड़ी हैं।

मरने और जलने की चर्चा कविताओं में बार बार मिलती है। जेल-जीवन की कठिनाइयों के बीच कफ़न और मरघट के सत्य से आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेड़ियों और तसले का कोई कठोर संदेश पाने की पाठक की आशा फलवती नहीं होती।

'माँ,' 'देशाभिमान', 'आँसू', 'दो पत्र', 'क्रंदन', 'जौहर', 'दोषी कौन' इत्यादि कुछ उत्तम कविताओं से युक्त इस आकर्षक संग्रह का कवि आशावाद को अपनाकर विशेष सफलता प्राप्त कर सकता है।

हरिमोहनलाल श्रीवास्तव (एम० ए०, एल० टी०, सा० रत्न)

मनोहर कहानियाँ—लेखक-मक्खनलाल दम्माणी। प्रकाशक—चाँद प्रिंटिंग प्रेस, किंग एडवर्ड मेमोरियल रोड, बीकानेर। मूल्य ।।)।

प्रस्तुत पुस्तक में तेरह कहानियाँ और इन्हीं से संबद्ध तेरह चित्र हैं। कुछ कहानियाँ बहुत प्रचलित हैं; जैसे—'शेर और चूहा' तथा 'लोमड़ी और कौवा' की कहानियाँ। पुस्तक की सभी कहनियाँ बालोपयोगी तथा शिक्षाप्रद हैं। सभी कहानियों के अंत में उनमें निहित शिक्षा का उल्लेख कर दिया गया है। इस क्षेत्र में लेखक को और काम भी करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवंगत डा० हीरानंद शास्त्री

डा० हीरानंद शास्त्री संस्कृत और हिंदी के मर्मज्ञ थे, पुरातत्त्व के पंडित तो वे थे ही। कई वर्षों तक उन्होंने भारत-सरकार के पुरातत्त्व-विभाग के संचालक के रूप में कार्य किया था। इस पद पर रहकर उन्होंने कई खोदाइयों का बहुत ही योग्यतापूर्वक संचालन किया। इस पद से अवकाश-ग्रहण करने के पश्चात् वे बड़ौदा राज्य के पुरातत्त्व-विभाग के संचालक नियुक्त हुए। वहाँ भी उन्होंने बहुत ही विवेकपूर्वक कार्य किया। इधर वे पंजाब चले गए थे और वहीं गुरुदासपुर में उनका स्वर्गारोहण हो गया।

नागरीप्रचारिणी सभा से शास्त्री जी का बहुत ही घनिष्ठ संबंध था। वे बहुत दिनों से बड़ौदा राज्य और पंजाब प्रांत के प्रतिनिधि के रूप में 'सभा' की कार्यसमिति के सदस्य थे। उन्होंने 'सभा' के 'आर्यभाषा पुस्तकालय' को लगभग एक हजार पुस्तकें दी हैं, जिनमें संस्कृत (१४८), हिंदी (५८), अँगरेजी (४७६) तथा अन्य भाषाओं (६६) की पुस्तकें हैं, इनमें जैन-ग्रंथ (६०) भी हैं। इन ग्रंथों में इतिहास और पुरातत्त्व-विषयक ग्रंथों का प्राधान्य है। अन्य भाषा की पुस्तकों में जर्मन, फ्रेंच, डच, पाली, मराठी, तामिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ भाषाओं की आरंभिक कक्षा की पुस्तकें हैं। कुछ हस्तलिखित पुस्तकें (२५५) भी उन्होंने दी हैं।

शास्त्री जी के स्वर्गारोहण से 'सभा' का एक हितेच्छु और सहायक उठ गया। हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' शास्त्री जी के सुपुत्र हैं। हम शास्त्री जी के शोक-संतप्त परिवार के साथ समवेदना प्रकट करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह उनकी दिवंगत आत्मा को सद्गति दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी-साहित्य का इतिहास

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

इसका विषय नाम से ही प्रकट है। इस विषय के जितने ग्रंथ आज तक प्रकाशित हुए हैं उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है। इसमें आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों तथा लेखकों का परिचय और उनकी कृतियों के सुंदर उदाहरण तो हैं ही, इसकी उल्लेखनीय और सर्वथा मौलिक विशेषता है प्रत्येक काल की प्रवृत्ति और विचारधारा का पांडित्यपूर्ण विशद विवेचन। यह इतिहास अपने ढंग का पहला और अद्वितीय है। भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में यह पाठ्य-ग्रंथ के रूप में नियुक्त है। मूल्य ६॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

ग्यारहवाँ भाग

(१) कौटिलीय अर्थशास्त्र में राजा का स्वरूप

[ले०—श्री सत्यकेतु विद्यालंकार, काँगड़ी]

भारतीय राजशास्त्र के इतिहास में इस बात की विवेचना सुगमता के साथ नहीं की जा सकती कि विविध राजशास्त्र-प्रणेताओं के विचारों पर उनके समय का—उनकी परिस्थितियों का किस हद तक असर पड़ा है। कारण यह है कि भारतीय इतिहास में तिथि-क्रम का विषय अभी बहुत विवादग्रस्त है। साथ ही, विविध राजशास्त्र-प्रणेताओं का काल भी अभी पूरी तरह निश्चित नहीं किया जा सका है। आचार्य कौटिल्य के काल के संबंध में ही ऐतिहासिकों में मत-भेद है। अनेक विद्वान् जहाँ इस अर्थशास्त्र को चौथी सदी ई० पू० का बना मानते हैं, वहाँ ऐसे विद्वानों की भी कमी नहीं, जो इसे तीसरी सदी ई० प० या इसके भी बाद का स्वीकार करते हैं।[१] फिर भी कौटि-

(१) अर्थशास्त्र के समय के संबंध में निम्नलिखित विद्वानों ने विचार किया है।

R. K. Mukerji—Introduction to the N. N. Law's work on.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीय अर्थशास्त्र में ऐसी अंतःसाक्षियों की कमी नहीं है, जिनसे हम उन परिस्थितियों का कुछ पता लगा सकें, जिनका कि आचार्य चाणक्य के विचारों पर प्रभाव पड़ा था। यह अर्थशास्त्र अपने अंतिम स्वरूप में चाहे किसी समय आया हो, पर इसमें संदेह नहीं कि इसका मुख्य ढाँचा उस समय की अवस्थाओं पर आश्रित है, जब कि भारत में मगध का साम्राज्यवाद विकसित हो रहा था, जब कि अनेक छोटे छोटे राज्य अपनी सत्ता को नष्ट कर एक विशाल साम्राज्य में विलीन हो रहे थे। आचार्य चाणक्य के राजनीतिक विचारों को ठीक ठीक समझने के लिये यह जरूरी है कि हम उन परिस्थितियों का संक्षेप से वर्णन करें जो कि इस अर्थशास्त्र के निर्माण-काल में विद्यमान थीं और जिन्होंने अनिवार्य रूप से इसके विचारों पर प्रभाव डाला था।

प्रो० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार चाणक्य का समय चौथी सदी इ० पू० में है और तभी यह ग्रंथ बनाया गया है।

प्रो० जॉली के अनुसार अर्थशास्त्र का समय तीसरी सदी इ० प० है। (Jolly—Arthashastra, Preface, p. 29)

प्रो० जॉली की युक्तियों का उत्तर काशीप्रसाद जायसवाल ने दिया है। (K. P. Jayaswal—Hindu Polity, App. c, Pt. I, pp. 203-219) डा० भंडारकर ने भी इस प्रश्न पर विचार किया है। (Carmæcal Lectures, p. 110) डा० विन्टरनिट्ज ने भी अर्थशास्त्र को तीसरी सदी इ० प० के बाद का माना है। (Winternitz—Kautaliya Arthashastra in "Calcutta Review" for 1924) इनका उत्तर डा० गणपतिशास्त्री ने दिया है। (Ganpatishastri—Arthashastra, vol. iii, Introduction, pp. 2-6.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य चाणक्य का समय राजनीतिक साम्राज्यवाद के विकास का समय था। उससे पहले का भारत अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था, जिनमें कि अनेक राज्य राजतंत्र थे और अनेकों में गणतंत्र या संघतंत्र-शासनप्रणालियाँ विद्यमान थीं। ये सभी राज्य प्रायः किसी एक कुल या जाति (Tribe) पर आश्रित थे, इनके आधार कुल थे, इन्हें हम कुलतंत्र राज्य (Tribal states) भी कह सकते हैं।[1] इनमें अनेकविध शासन-प्रणालियाँ विद्यमान थीं और एक ही राज्य में भिन्न भिन्न समयों में शासन-प्रणाली में परिवर्तन भी होते रहते थे।[2] इनमें परस्पर संघर्ष भी जारी रहते थे और किसी एक राज्य को अपने में सर्व-प्रधान, सार्वभौम या चक्रवर्ती समझने की प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। पर इस प्रवृत्ति से विविध राज्यों की सत्ता का अंत न हो जाता था। मगध में साम्राज्यवाद के विकास के साथ साथ इन विविध राज्यों को एकदम नष्ट किया जाना शुरू हुआ। कुलतंत्र राज्यों (Tribal states) का स्थान प्रादेशिक राज्य (Territorial states) लेने लगे। इस संपूर्ण प्रक्रिया को प्रदर्शित करने में बहुत समय लगेगा, उसकी यहाँ आवश्यकता भी नहीं है। जब कौटिलीय अर्थशास्त्र का निर्माण हुआ, उस समय अपनी अपनी जातियों या कुलों की दृष्टि को

---

(१) पुराने राज्य कुल-तंत्र थे। यथा—यादवाः, कौरवाः, पौरवाः, पांचालाः, मद्राः आदि।

(२) महाभारत के समय में पांचाल में राजतंत्र शासन था, पर कौटिलीय अर्थशास्त्र में उसका परिगणन राजशब्दोपजीवी संघों में किया गया है। विदेह में रामायण और महाभारत के समय राजतंत्र शासन था, पर बौद्ध साहित्य में उसे गणतंत्र बताया गया है। इसी तरह अन्य अनेक राज्यों के भी उदाहरण दिए जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर एक विशाल दृष्टि उत्पन्न हो चुकी थी, जिसके द्वारा संपूर्ण भारत में एक राज्य स्थापित करने की कल्पना की जा रही थी। कौटिल्य ने लिखा है—"हिमालय से लेकर समुद्र पर्यंत यदि एक सीधी रेखा खींची जाय, तो एक हजार योजन लंबा जो देश है, जो भूमि है, वह एक चक्रवर्त्ति-क्षेत्र है।[1]" चाणक्य के सम्मुख यह एक हजार योजन तक विस्तृत देश एक आदर्श के रूप में विद्यमान था, जिसमें कि एक चक्रवर्त्ती राज्य की स्थापना होनी चाहिए थी। आचार्य चाणक्य का 'विजिगीषु' इसी विशाल देश में एक साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था। पर अभी यह स्वप्न क्रियारूप में परिणत न हुआ था। कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन से मालूम होता है कि अभी भारत में—इस चक्रवर्त्ति-क्षेत्र में—अनेक गणतंत्र या संघतंत्र तथा अन्य प्रकार के राज्य विद्यमान थे। इन राज्यों के नाम भी अर्थशास्त्र द्वारा ज्ञात होते हैं।[2] कौटिल्य का प्रयत्न यह था कि इन सब राज्यों को नष्ट कर 'एक-राज' की स्थापना की जाय[3] और यदि यह संभव न हो, तो कम से कम इन राज्यों को अधीन तो अवश्य कर लिया जाय।[4]

---

(१) "देशः पृथिवी। तस्यां हिमवत्समुद्रांतरमुदीचीनं योजनसहस्र-परिमाणं तिर्यक् चक्रवर्त्तिक्षेत्रम्।" (कौ० अर्थ० ६।१)

(२) "काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्त्ताशास्त्रोपजीविनः। लिच्छविकवृजिकमल्लकमद्रककुकुरकुरुपांचालादयो राजशब्दोप-जीविनः।" (कौ० अर्थ० ११।१)

(३) "सङ्घेष्वेवमेकराजो वर्तेत।" (कौ० अर्थ० ११।१)

(४) "संघलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः।" (कौ० अर्थ० ११।१) इस अधिकरण में प्रदर्शित नीति को ध्यान से पढ़िए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार कौटिल्य के समय में पुराने छोटे छोटे राज्यों—नगर-राज्यों—का युग समाप्त हो चुका था। इन नगर-राज्यों के अवशेष पर कौटिल्य जिस विशाल राज्य के निर्माण का स्वप्न देख रहा था, उसका आधार कोई एक कुल या जाति न हो सकती थी, उसका आधार एक विस्तृत देश था, जो कि हिमालय से समुद्र तक एक हजार योजन विस्तीर्ण था। यह परिवर्तन बहुत ध्यान देने योग्य है। पुराने कुलतंत्र नगर राज्यों में शासन-प्रणाली चाहे एकतंत्र हो, श्रेणितंत्र हो या गणतंत्र हो, पर राज्य का आधार कुल या जाति (Tribe) होने से जनता के अधिकार अनेक अंशों में सुरक्षित थे। राज्य में भूमि की अपेक्षा जनता का तत्त्व अधिक महत्त्व रखता था। इसी लिये इस जनता, कुल या जाति के परंपरागत अधिकारों को राज्य में ऐसा स्थान प्राप्त था, जिन्हें उल्लंघन करने का किसी श्रेणि या राजा को साहस न हो सकता था। ये परंपरागत अधिकार चाहे वर्तमान अर्थों में राजनीतिक अधिकार न हों, पर इनकी सत्ता अवश्य थी और ये राज्य में विशेष प्रभाव रखते थे। पर अब राज्य का आधार इस जनता, कुल या जाति के स्थान पर देश या भूमि बन रही थी। इस देश या भूमि में एक जनता नहीं, पर अनेक जनताएँ, अनेक जातियाँ और अनेक कुल बसते थे। इसी लिये इस नवीन राज्य में परंपरागत अधिकारों को वह स्थान प्राप्त नहीं हो सकता था, जो पुराने राज्यों में प्राप्त था। राज्य के आधार में परिवर्तन के साथ साथ राज्य के स्वरूप में—राजसंस्थाओं में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हो रहे थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र में इन परिवर्त्तनों की सत्ता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुशीलन से जो परिस्थिति हमें प्राप्त होती है, उसमें छोटे छोटे राज्य नष्ट हो चुके हैं या नष्ट हो रहे हैं, पर अभी एक विशाल साम्राज्य का विकास भी पूर्णता तक नहीं पहुँचा है। इसके साथ ही, भिन्न भिन्न स्थानों और भिन्न भिन्न क्षेत्रों के परंपरागत अधिकारों में भी भारी परिवर्त्तन हो रहा है, कुछ पुरातन अधिकारों को बिलकुल नष्ट कर दिया गया है, कुछ को स्वीकार कर लिया गया है और कुछ में हस्तक्षेप की नीति का प्रारंभ किया गया है। हम यथास्थान अपने इस कथन को विशद रूप से स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

आचार्य चाणक्य के राज्य संबंधी सिद्धांतों का केंद्र राजा है। यद्यपि अर्थशास्त्र में प्राचीन परंपरा के अनुसार राज्य के सात तत्त्व या प्रकृतियाँ स्वीकृत की गई हैं, तथापि चाणक्य ने मुख्यता दो तत्त्वों को ही दी है।[1] राजा और राज्य—इस प्रकार दो तत्त्वों द्वारा ही चाणक्य के मत में कार्य चल सकता है।[2] पुराने आचार्य राज्य में राजा को इतना महत्त्व न देते थे। उनकी सम्मति में स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दंड और मित्र—इन सात तत्त्वों में पिछले पिछले तत्त्व की प्रधानता थी।[3] स्वामी और अमात्य में अमात्य अधिक महत्त्वपूर्ण था।[4] अमात्य और जनपद में जनपद अधिक महत्त्व-

(१) 'स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः।'
(कौ० अर्थ० ६।१)

(२) 'राजा राज्यमिति प्रकृति संक्षेपः।' (कौ० अर्थ० ८।२)

(३) कौ० अर्थ० ८।१।

(४) 'स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यसनानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः। नेति भारद्वाजः। स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति।'
(कौ० अर्थ० ८।१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण था।[1] और इसी प्रकार पिछले पिछले तत्त्व अधिक अधिक महत्त्व रखते थे। इस तरह पुराने आचार्यों के मत में राज्य में राजा का महत्त्व सबसे कम था। यह होना बहुत स्वाभाविक भी है, क्योंकि पुराने कुलतंत्र नगर-राज्यों में राज्य का आधार संपूर्ण जनता होती थी, उनमें राजा का बहुत महत्त्व न हो सकता था। पर अब जो नए विशाल राज्य बन रहे थे, उनका आधार प्रदेश था, वह एक 'विजिगीषु' राजा की कृति थी। यद्यपि परिस्थितियाँ और ऐतिहासिक प्रवाह इस प्रक्रिया में सहायक थे, तथापि इन साम्राज्यों का निर्माण एक 'विजिगीषु' राजा की प्रतिभा पर आश्रित था। इसी लिये आचार्य चाणक्य के मत में राज्य के सब तत्त्वों में राजा सर्वप्रधान था।[2] यदि राजा ठीक हो, तो अन्य सब तत्त्व सँभल सकते थे। पर यदि राजा ही ठीक न हो, तो राज्य का चल सकना संभव न था। इसी लिये आचार्य चाणक्य ने राजा को सुमार्ग-गामी बनाए रखने के लिये तथा 'राज्य' जैसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व का एक क्षण भर के लिये भी अभाव न होने देने के लिये इतना जोर दिया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र के सब राज्य संबंधी सिद्धांत इस 'राजा' के चारों ओर ही घूमते हैं। कौटिल्य का राज्य

---

(१) 'अमात्यजनपदव्यसनयोर्जनपदव्यसनं गरीय'। इति विशालाक्षः।
(कौ० अर्थ० ८।१)

(२) कौ० अर्थ० ८।१।

कौटिल्य ने इस अध्याय में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि राज्य के सातों तत्त्वों में राजा सर्वप्रधान है, राजा की आपत्ति अन्य सब तत्त्वों की आपत्ति की अपेक्षा अधिक भयानक है। दो दो तत्त्वों की तुलना कर पहले पहले तत्त्व की महत्ता प्रदर्शित की गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधी आदर्श यही है, कि 'एक-राजत्व' या 'एकैश्वर्य'[1] की स्थापना की जाय। राजा के अभाव में कौटिल्य के राज्य का आदर्श तो दूर रहा, राज्य का ढाँचा भी कायम नहीं रह सकता। कौटिल्य के सभी राज्यसंबंधी विचारों के मूल में राजा का यह ऊँचा महत्त्वपूर्ण स्थान कार्य करता हुआ दृष्टि-गोचर होता है।

'राजा' की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इस विषय में अपने सिद्धांत का आचार्य चाणक्य ने कहीं स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया। परंतु सर्व साधारण जनता में राजा की उत्पत्ति के उसी सिद्धांत को प्रचारित करने का निर्देश किया गया है, जो कि प्राचीन भारतीय राजशास्त्रों में अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है।[2]

जिस प्रकरण में यह सिद्धांत उपलब्ध होता है, उसमें आचार्य चाणक्य ने उन उपायों का उल्लेख किया है, जिनके द्वारा अपने देश में राजा के प्रति जनता की अनुकूलता स्थापित की जा सकती है। "गुप्तचरों को चाहिए कि परस्पर विरोधी दल बनाकर तीर्थ, सभाशाला, पूरा और जन-समवाय में जाकर आपस में इस प्रकार विवाद करें। एक दल कहे—'सुना तो यह जाता है कि यह राजा सर्व-गुण-संपन्न है; पर हमें तो इसमें कोई गुण नजर नहीं आता। यह तो खाली पौरों और जानपदों को दंड और कर द्वारा सताता ही है।' उन स्थानों पर जो लोग इस बात का समर्थन करें, उन्हें तथा

(१) कौ० अर्थ० ५।६।

(२) समयवाद तथा अन्य सिद्धांतों के लिये देखिए 'भारतीय राजशास्त्र' अध्याय २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस गुप्तचर को इस प्रकार दूसरा दल समझावे—'पहले मात्स्य-न्याय प्रचलित था। उससे दिक आकर जनता ने वैवस्वत मनु को राजा बनाया था। अपनी उपज में से, धान्य का छठा भाग, व्यापारीय वस्तुओं का दसवाँ भाग तथा सुवर्ण उस राजा के लिये भाग निश्चित किया गया। इस भाग को भृति या वेतनरूप में पाकर राजा जनता के योग और क्षेम का संपादन करने में समर्थ हुए। जो राजा ठीक प्रकार से दंड की व्यवस्था नहीं करता और कर वसूल नहीं करता, वह जनता का योग और क्षेम संपादन नहीं कर सकता। जनता का सब पाप ऐसे राजा को लग जाता है। यही कारण है कि जंगल में रहनेवाले तपस्वी लोग भी अपने संचित अन्न (उंछ) का छठा भाग राजा को यह सोचकर प्रदान करते हैं कि 'यह उसका हिस्सा है, जो हमारी रक्षा करता है।' राजा का वह स्थान है, जो कि इंद्र और यम का है। इनका कोप और प्रसन्नता तो प्रत्यक्ष ही होते हैं। जो राजाओं का अपमान करते हैं, उन्हें तो ईश्वर की ओर से भी दंड मिलता है। अतः राजाओं का अपमान नहीं करना चाहिए।' इस प्रकार गुप्तचर लोग मामूली जनता को समझाकर राजा के अनुकूल करें।"[1]

आचार्य चाणक्य के राजा की उत्पत्ति संबंधी इस मत को स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह पर्याप्त स्पष्ट है। पर इसमें एक बात ध्यान देने योग्य है। चाणक्य यह अनुभव करते हैं कि इस सिद्धांत द्वारा केवल मामूली आदमियों को—इनके लिये चाणक्य ने स्वयं 'क्षुद्रक' शब्द

(१) कौ० अर्थ० १। १३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग किया है—ही समझाया जा सकता है। भारतीय राज-शास्त्र-प्रणेताओं का यह प्राचीन प्रचलित मत पुराने कुल-तंत्र राज्यों के लिये तो ठीक समझा जा सकता था। वस्तुतः पहले कभी जनता में मात्स्य-न्याय प्रचलित था या नहीं, वस्तुतः लोगों ने मिलकर किसी एक व्यक्ति को राजा बनाया था या नहीं—इस बात पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं। इस समयवाद के सिद्धांत का मूल तत्त्व तो यह है कि राजा की सत्ता प्रजा या जनता की अनुमति तथा स्वीकृति पर आश्रित है। जनता राजा को यदि स्वयं नहीं चुनती, तो उसे स्वीकृत अवश्य करती है। पुराने कुल-तंत्र राज्यों में वस्तुतः यही सिद्धांत विद्यमान था। वैदिक काल में जनता राजा को स्वीकार किया करती थी, उसके चुनाव में अनुमति दिया करती थी।[१] ब्राह्मणकाल में भी यही प्रथा विद्यमान थी।[२] रामायण के समय में भी जनता राजा को स्वीकृत किया करती थी।[३] यही परंपरा किसी न किसी रूप में भारत के उन सभी राज्यों में विद्यमान रही, जिनका आधार कुल, श्रेणि या जनता होती थी।[४] पर कौटिल्य के जिस 'विजिगीषु' राजा ने समुद्र से लेकर हिमालय तक एक हजार योजन विस्तृत प्रदेश पर अपना 'एकराज' या 'एकैश्वर्य' शासन स्थापित करने

(१) ऋग्वेद १० । १७८; १० । १७३ । ६ ।
अथर्ववेद ८ । ८७—८८; ३ । ५; ३ । ४; ४ । ८ ।

(२) K. P. Jayaswal—Hindu Polity, Part II, pp 14-41.

(३) वाल्मीकीय रामायण २,१४ ।

(४) K. P. Jayaswal—Hindu Polity, Part II, pp. 42-59.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयत्न किया था, उसके लिये क्या यह सिद्धांत किसी भी तरह लागू हो सकता था? उसके सिंहासनारूढ़ होने में जनता की अनुमति या स्वीकृति को किसी भी प्रकार से स्थान प्राप्त नहीं था। उसकी सत्ता का आधार तो उसकी अपनी शक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था। इसलिये आचार्य चाणक्य यह खूब समझते थे कि प्राचीन समयवाद का सिद्धांत उनके 'राजा' पर नहीं लग सकता। पर यदि मामूली आदमियों को—क्षुद्रकों को—बहकाया जा सके, उन्हें राजभक्त बनाया जा सके, तो इसमें हानि भी क्या है? गुप्तचरों द्वारा इसी लिये यह कार्य करने का आदेश किया गया है।

एक अन्य स्थान पर भी आचार्य चाणक्य ने राजशास्त्रवेत्ताओं के इसी ढंग के उदात्त सिद्धांत का अपने उद्देश्य के लिये प्रयोग किया है। "संग्राम शुरू होने से पूर्व राजा को चाहिए कि अपने सैनिकों को एकत्र कर उनके सम्मुख इस प्रकार भाषण दे—'जैसे आप लोगों को वेतन मिलता है, वैसे ही मुझे भी मिलता है। इस राज्य का उपभोग मुझे आप लोगों के साथ मिलकर ही करना है। इसलिये जैसे मैं कहूँ, उसके अनुसार ही शत्रुओं पर आक्रमण करो'।"[1] चाणक्य को सभी उपायों से अपने विजिगीषु राजा का हित-संपादन करना था। वह जहाँ जनता के अंध विश्वासों का राजा के

---

(१) "संहत्य दण्डं ब्रूयात्—'तुल्यवेतनोऽस्मि; भवद्भिस्सह भोग्यमिदं राज्यं मयाऽभिहितः परोऽभिहन्तव्यः।' इति"

(कौ० अर्थ० १०।३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितों के लिये उपयोग कर रहा था[१], वहाँ यदि जनता में पुराने प्रचलित उदात्त विचारों का भी उपयोग करे, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। पर ये चाणक्य के अपने सिद्धांत नहीं हैं। वह अपने विजिगीषु राजा को जनता का नौकर, भाग-हर या भृत्य नहीं बनाना चाहता था। वह तो अपने राजा में एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करता था, जो 'एकराज' हो, जिसका 'एकैश्वर्य' स्थापित हो।

तो फिर आचार्य चाणक्य की दृष्टि में राजा का क्या स्वरूप था? आचार्य चाणक्य की दृष्टि में राज्य में राजा का स्थान सबसे ऊपर था, क्योंकि वह "राजा ही है, जो मंत्री पुरोहित आदि राजकर्मचारियों को नियत करता है, जो राज्य के भिन्न भिन्न विभागों के अध्यक्ष नियत करता है, और जो उन सब आपत्तियों को दूर करता है जो कि जनता पर या देश पर आती हैं। राज्य की वृद्धि के सब उपाय राजा द्वारा ही तो किए जाते हैं। जब अमात्य आपत्ति में फँस जाते हैं या कार्य-समर्थ नहीं रहते, तब राजा ही दूसरे अमात्य नियत करता है। वह राजा ही है, जो सम्मान योग्य मनुष्यों का सम्मान करता है और दोषयुक्त मनुष्यों का नियंत्रण करता है।"[२] इतना ही नहीं, "यदि राजा संपन्न है, तो वह जनता को या राज्य के अन्य

(१) उदाहरण के लिये—"ज्योतिषी तथा शकुन विचारनेवाले यह फैलाकर सैनिकों को उत्साहित करें कि, 'राजा तो सर्वज्ञ है। दैव राजा के अनुकूल है।' इसी तरह की बातों से शत्रुओं में आतंक फैलावें"। इसी तरह—सूत और मागध लोग योधाओं की जाति, कुल आदि की खूब प्रशंसा कर, ताकि उनमें उत्साह आवे। पुरोहित के आदमी कहें, हमने जो अभिचार क्रियाएँ की थीं, वे सफल हो गई हैं। मुहूर्त बतानेवाले लोग भी इसी ढंग से प्रचार करें। (कौ० अथ० १०।३)

(२) कौ० अर्थ० ८।१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब तत्त्वों को भी संपत्ति से युक्त कर देता है। राजा का जो शील होता है, वही शील प्रजा का भी हो जाता है, क्योंकि जनता का उत्थान और पतन तो पूरी तरह राजा पर ही आश्रित है।"[1] अतः निष्कर्ष यह निकला कि "राज्य में राजा ही कूटस्थानीय है।"[2] अन्य सब प्रकृतियाँ या राज्य के तत्त्व तो गौण हैं, मुख्य प्रकृति या मुख्य राजकीय तत्त्व राजा ही है।

इसी सिद्धांत को आचार्य चाणक्य ने अनेक स्थानों पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है—"यदि राजा जनता के योग और क्षेम में प्रमाद करे, आलस्य करे, तो जनता में लोभ की प्रवृत्ति होने लगती है, जनता में वैराग्य या उपेक्षा का भाव आने लगता है—जनता का विनाश हो जाता है।"[3]

"यदि राजा आत्मवान् हो, समर्थ हो, तो राज्य के अन्य तत्त्वों—प्रकृतियों को चाहे वे असंपन्न क्यों न हों, संपन्न कर देता है। पर यदि राजा ही अनात्मवान्—असमर्थ हो, तो चाहे अन्य तत्त्व कितने ही उन्नत हों, प्रकृति कितनी ही राजा में अनुरक्त हो, पर उनका विनाश हो जाता है।"[4]

ये उद्धरण स्पष्ट करते हैं कि आचार्य चाणक्य के मत में संपूर्ण राज्य में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व राजा ही है। अन्य सब तत्त्व उस पर आश्रित हैं। यदि राजा समर्थ नहीं,

---

(१) 'स्वामी च संपन्नः स्वसंपद्भिः प्रकृतिः संपादयति। स्वयं यच्छीलस्तच्छीलाः प्रकृतयो भवंति। उत्थाने प्रमादे च तदायत्तत्वात्।
(कौ० अर्थ० ८। १)

(२) 'तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति।' (कौ० अर्थ० ८। १)

(३) 'राज्ञः प्रमादालस्याभ्यां योगक्षेमविधावपि।
प्रकृतीनां क्षयो लाभो वैराग्यं चोपजायते॥'(कौ० अर्थ० ७।५)

(४) 'सम्पादयत्यसम्पन्नाः प्रकृतीरात्मवान् नृपः।
विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृती हन्त्यनात्मवान्॥'(कौ० अर्थ० ६।१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अन्य तत्त्व कितने ही उन्नत क्यों न हों, व्यर्थ हैं, उनका विनाश अवश्यंभावी है। पर यदि राजा समर्थ है, तो इस बात की कोई चिंता नहीं, कि अन्य तत्त्व उन्नत नहीं हैं। राजा के कारण ही वे स्वयं उन्नत हो जायँगे। इस प्रकार आचार्य चाणक्य ने अपने 'चातुरन्त' साम्राज्य का आधार राजा को बनाने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि इस राजा को पूर्ण मनुष्य बनाने के लिये अनेकविध उपायों का उपदेश किया गया है। आचार्य चाणक्य का 'राजा' कोई मामूली आदमी नहीं हो सकता था, उसके लिये असाधारण शक्ति, अद्वितीय विनय (training) और आदर्श शिक्षा की आवश्यकता थी। चाणक्य अपने चातुरन्त साम्राज्य के स्वप्न को पूर्ण करने की आशा किसी साधारण व्यक्ति से नहीं रख सकता था। उसके लिये जो 'एकराज' अभीष्ट था, वह असाधारण मनुष्य होना चाहिए था। कौटिल्य ने स्वयं अपने आदर्श 'राजा' का वर्णन किया है। वह कहता है—

राजा के गुण निम्नलिखित होने चाहिएँ—"वह बहुत ऊँचे कुल का हो, सौभाग्यशाली हो, अत्यंत बुद्धिमान् हो, विशाल दृष्टि से युक्त हो, धार्मिक हो, सत्य बोलनेवाला हो, वाणी और काम में एक हों, कृतज्ञ हो, सदा ऊँचे लक्ष्य को सम्मुख रखनेवाला हो, अत्यंत उत्साहसंपन्न हो, दीर्घसूत्री न हो (शीघ्र काम करनेवाला हो), सामंतों को वश में रखने में समर्थ हो, अपने निश्चय में दृढ़ रहनेवाला हो, उसकी परिषद् छोटी न हो, वह विनय (नियंत्रण) में रहने की इच्छावाला हो।"[१]

(१) कौ० अर्थ० ६ । १ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अतिरिक्त आठ गुण और हैं, जो राजा में होने चाहिएँ। जिस राजा की प्रज्ञा या बुद्धि इन गुणों से युक्त होगी, वही आदर्श राजा होगा—शुश्रूषा—जानने की इच्छा, श्रवण—दूसरों के विचारों को सुनना, ग्रहण—लेने योग्य बात को ले लेना, धारण—ग्रहण की हुई बात को भुला न देना, विज्ञान—प्रत्येक बात को ठीक तरह समझ लेना, ऊह—समझी हुई बात के गुणदोषों पर सम्यक् विचार, अपोह—जो बात दोषयुक्त मालूम पड़े उसका परित्याग कर देना, तत्त्वाभिनिवेश—जो बात ठीक मालूम पड़े उस सारभूत बात को स्वीकार कर लेना।[1]

कौटिल्य को अपने आदर्श राजा का इस प्रकार स्वरूपवर्णन करने से ही संतुष्टि नहीं हुई, जिस व्यक्ति को चातुरन्त साम्राज्य पर शासन करना हो, जिसके समर्थ होने से अन्य सब राजकीय तत्त्वों का स्वयं समर्थन हो जाता हो, उसके स्वरूप को और अधिक विस्तार से स्पष्ट करना चाहिए—

"राजा को वाग्मी होना चाहिए। उसकी बुद्धि बहुत उन्नत होनी चाहिए। उसकी स्मृति बहुत तेज होनी चाहिए। उसका मन अत्यंत दृढ़ होना चाहिए। उसे बलवान्, उन्नतचेता और संयमी होना चाहिए। उसे सब शिल्पों में निपुण होना चाहिए। शत्रु पर जब कोई दैवी या मानुषी आपत्ति आवे, तब उसे अपनी सेना द्वारा आक्रमण के लिये तैयार होना चाहिए और जब अपने राज्य पर आपत्ति आवे तब उसकी रक्षा में समर्थ होना चाहिए। उसे उपकार के बदले में उपकार और अपकार के बदले में अपकार करनेवाला

(१) कौ० अर्थ० ६। १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिए। उसे लज्जावान् होना चाहिए। उसे आपत्ति के प्रतीकार में समर्थ और उत्तम दशा का लाभ उठानेवाला होना चाहिए। उसे दूरदर्शी तथा विशाल दृष्टिवाला होना चाहिए। उसे देश और काल से लाभ उठानेवाला, पुरुषार्थी और कर्मवीर होना चाहिए। उसे संधि के प्रयोग में कुशल, युद्धनीति में निपुण, देश काल और व्यक्ति के अनुसार दान में समर्थ, संयमी और शत्रु के दोषों से लाभ उठा सकनेवाला होना चाहिए। उसका मंत्र (सलाह) बिलकुल गुप्त रहना चाहिए। उसकी हँसी तथा भ्रूभंगी आदि में गंभीरता होनी चाहिए। उसे काम, क्रोध, लोभ, जिद, चपलता, जल्दबाजी और चुगली से रहित होना चाहिए। उसे दूसरों से मुसकराकर बोलना चाहिए तथा पुरानी चली आई परंपराओं और रीति रिवाजों को जानकर उनके अनुसार कार्य करनेवाला होना चाहिए।"[1]

इस प्रकार आचार्य चाणक्य ने अपने विजिगीषु चातुरंत राजा का आदर्श चित्र खींचने का प्रयत्न किया है। निस्संदेह, जिस राज्य का आधार एक राजा हो, उसमें उस राजा के व्यक्तित्व की महत्ता बहुत अधिक है। उसी को संपूर्ण राज्य का संचालन करना है, राज्य के विविध अंग उसी के अधीन

(१) 'वाग्मी प्रज्ञाप्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः कृतशिल्पो व्यसने दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतिकारी ह्रीमान् आपत्प्रकृत्योर्विनियोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुषकारकार्यप्रधानः सन्धिविक्रमत्यागसंयमपणपरच्छिद्रविभागी संवृतादीनाभिहास्यजिह्मभ्रुकुटीचणः कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शक्यस्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इति।'

(कौ० अर्थ० ६ । १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, अतः उसका पूर्ण मनुष्य होना अवश्यंभावी है। पर यह 'पूर्णता' किस प्रकार प्राप्त की जाय? कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका प्रतिपादन भी विस्तार से किया गया है।

राजा को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वह पूर्ण मनुष्य बन सके। विनय या शिक्षण दो प्रकार का होता है, स्वाभाविक और कृतक।[1] अपने प्रयत्न से भी मनुष्य को सिखाया जा सकता है, पर प्रयत्न भी वहीं सफल होता है, जहाँ पहले से मनुष्य में कुछ क्षमता भी हो। क्रिया पात्र में ही सफल होती है, अपात्र में नहीं।[2] अतः आदर्श राज्य के लिये प्रयत्न द्वारा उसी मनुष्य को तैयार किया जा सकता है, जो स्वयं भी कुछ सामर्थ्य रखता हो, जो वस्तुतः पात्र हो। इसलिये स्वाभाविक रूप से ही होनहार आदमी को उत्तम से उत्तम शिक्षा दी जानी चाहिए। त्रयी और आन्वीक्षकी का अध्ययन इनके पारंगत विद्वानों द्वारा कराया जाय। वार्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य[3]) भिन्न भिन्न राजकीय विभागों के अध्यक्षों द्वारा सीखी जाय। और दंडनीति का अध्ययन ऐसे व्यक्तियों द्वारा कराया जाय, जो वक्ता और प्रयोक्ता—दोनों प्रकार के हों।[4] अभिप्राय यह है कि भिन्न भिन्न विद्याओं के प्रामाणिक विद्वानों द्वारा उनका विचारात्मक और क्रियात्मक—उभयविध ज्ञान प्राप्त कराया जाय। अपनी शिक्षा के लिये प्रतिदिन ऐसे विद्वानों का संग किया जाय,

(१) 'कृतकस्स्वाभाविकश्च विनयः ॥' (कौ० अर्थ० १।५)
(२) 'क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्।' (कौ० अर्थ० १।५)
(३) 'कृषिपशुपाल्ये वणिज्या च वार्ता।' (कौ० अर्थ० १।४)
(४) 'त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यः, वार्तामध्यक्षेभ्यः, दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः।' (कौ० अर्थ० १।५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो विद्यावृद्ध हों, क्योंकि विनय या शिक्षण विद्वानों के संग से ही हो सकता है।[१] इस प्रकार विद्या-प्राप्ति १६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए की जाय।[२]

परंतु केवल विद्या-प्राप्ति से शिक्षा पूर्ण नहीं हो सकती। कौटिल्य के आदर्शपूर्ण मनुष्य के लिये यह आवश्यक है कि उसने काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष का त्याग कर इंद्रियों पर पूर्णतया विजय प्राप्त की हुई है। विद्या-प्राप्ति के लिये भी इस इंद्रिय-जय की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है।[३] सब के सब शास्त्र ही इस बात का प्रतिपादन नहीं करते। अपितु इतिहास का अनुभव भी यही बताता है कि इंद्रियों पर विजय प्राप्त किए बिना किसी भी तरह सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। राजा चाहे कितना ही शक्तिशाली और विद्वान् क्यों न हो, उसका राज्य कितना भी विस्तृत क्यों न हो, पर यदि इंद्रियाँ उसके वश में नहीं हैं, तो वह नष्ट होने से बच नहीं सकता।[४] आचार्य चाणक्य ने अपने इस पक्ष को पुष्ट करने के लिये बहुत से प्राचीन उदाहरण दिए हैं और अंत में परिणाम निकाला है कि "ये तथा अन्य बहुत से राजा काम क्रोधादि ६ शत्रुओं के वशीभूत होने के कारण इंद्रियों को

---

(१) 'अस्य नित्यश्च विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्ध्यर्थम्, तन्मूलत्वाद्विनयस्य।' (कौ० अर्थ० १।५)

(२) 'ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्।' (कौ० अर्थ० १।५)

(३) 'विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः काम‌क्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः।' (कौ० अर्थ० १। ६)

(४) 'कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः। तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियः चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति।' (कौ० अर्थ० १।६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने वश में न कर सकने के कारण अपने बंधुओं तथा राष्ट्र के साथ विनष्ट हो गए"।[1]

इस प्रकार पूर्ण मनुष्य बनने के लिये विद्याओं का अध्ययन करना, विद्या-विनीत होना और इंद्रियों पर पूरा अधिकार रखना नितांत आवश्यक है। पर राजा के लिये इतने से भी काम नहीं चल सकता। उसे जिस महत्त्वपूर्ण कार्य का संपादन करना है, उसके लिये अधिक क्षमता तथा प्रयत्न की आवश्यकता है। आदर्श राजा अपना कार्य किस ढंग से चलायगा, किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करेगा, इसे कौटिल्य के शब्दों में ही उद्धृत करना अधिक उत्तम रहेगा—"काम, क्रोध आदि छओं शत्रुओं को परास्त कर इंद्रियों पर विजय प्राप्त करे। वृद्ध लोगों के संग द्वारा बुद्धि का विकास करे। गुप्तचरों द्वारा संपूर्ण विषयों पर दृष्टि रखे। कार्य-शील होकर निरंतर प्रयत्नशील रहकर योग और क्षेम का संपादन करे। जनता को 'स्वधर्म' में कायम रखे। विद्या के उपदेश श्रवण करके अपना शिक्षण निरंतर करता रहे। देश की संपत्ति तथा समृद्धि बढ़ाकर लोक-प्रिय बनने का प्रयत्न करे। दूसरों का हित करने में ही अपनी वृत्ति रखे।"[2]

इसी प्रकार "दूसरों की स्त्रियों तथा संपत्ति को कोई भी क्षति न पहुँचावे। स्वप्न में भी भोग विलास का खयाल न करे। झूठ से बचे। अपने वेष में—रहन सहन में—उद्धत

---

(१) 'एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः।
सबंधुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः॥'
(कौ० अर्थ० १।६)

(२) कौ० अर्थ० १।७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो। अनर्थकारी कामों से बचे। ऐसे कोई व्यवहार न करे, जो धर्मविरुद्ध हों या जिनमें अनर्थ की संभावना हो। अपनी उन्हीं कामनाओं को पूर्ण करने का प्रयत्न करे, जो धर्म और अर्थ के विरुद्ध न हों"।[1] पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि कष्ट में अपने जीवन को व्यतीत करे। कष्ट से सदा बचे, कभी दुखी न हो। अपने को सदा सुखी रखे। धर्म, अर्थ और काम—तीनों को समान रूप से सेवन करे, तीनों में समतुलन रखे। इन तीनों में से यदि किसी एक का भी अधिक सेवन किया जाता है, तो केवल शेष दोनों को ही नुकसान नहीं पहुँचता पर अपने को भी हानि पहुँचती है। कारण यह कि धर्म, अर्थ और काम—ये तीनों ही आपस में एक दूसरे पर आश्रित हैं, स्वतंत्र नहीं हैं।[2]

इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि कोई मनुष्य आचार्य चाणक्य द्वारा उपदिष्ट उपर्युक्त मार्ग का अवलंबन कर सके, तो वह पूर्णता प्राप्त कर सकता है। आचार्य चाणक्य यही चाहता था कि उसका आदर्श विजिगीषु राजा जीवन में इतनी उच्चता और पूर्णता प्राप्त कर सके। पर साथ ही, वह यह भी अनुभव करता था कि क्रियात्मक दृष्टि से कोई भी व्यक्ति संभवतः इतनी पूर्णता प्राप्त न कर सकेगा। इसी लिये उसने आवश्यकता समझी थी कि मर्यादा स्थापित करने का कोई दूसरा उपाय भी अवश्यंभावी है। जहाँ एक तरफ राजा को पूर्ण आदर्श मनुष्य बनाने का प्रयत्न किया जाय, वहाँ

(१) कौ० अर्थ० १।७।

(२) 'धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत। न निःसुखः स्यात्। समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम्। एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मनमितरौ च पीडयति। (कौ० अर्थ० १।७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी तरफ इस बात का भी विधान किया जाय कि यदि राजा भूल करे, तो उसे सावधान किया जा सके; यदि वह मार्गच्युत होने लगे, तो उसे सन्मार्ग पर लाया जा सके। यह कार्य या तो आचार्य कर सकता था और या अमात्य-वर्ग।[1]

राजा को सन्मार्ग पर कायम रखने में आचार्य या पुरोहित का बहुत महत्त्व है। राजा चाहे कितना ही पूर्ण और आदर्श मनुष्य क्यों न हो, पर उससे भूल हो सकती है। अतः राजा की सहायता के लिये एक ऐसा व्यक्ति अवश्य होना चाहिए, जो उसे भूलों से सावधान करता रहे। यह महत्त्वपूर्ण कार्य पुरोहित द्वारा किया जा सकता है। इसलिये चाणक्य ने विधान किया है कि एक ऐसे व्यक्ति को पुरोहित के पद पर नियत किया जाय, जो उच्च कुल का हो, उन्नत आचारवाला हो, षडङ्ग वेद, दैव-विद्या, निमित्त-विद्या और दंडनीति में पारंगत हो, दैव और मनुष्य-कृत विपत्तियों का प्रतिकार आथर्वण उपायों से करने में समर्थ हो।[2] "जैसे आचार्य के पीछे शिष्य, पिता के पीछे पुत्र और स्वामी के पीछे भृत्य चलता है, उसी प्रकार इस पुरोहित के कहने के पीछे राजा चले।"[3]

चाणक्य के इन वाक्यों का यह अभिप्राय समझा जा सकता है कि उसके विचारों पर प्राचीन ब्राह्मण-प्रभुता का प्रभाव विद्यमान था। प्राचीनतम काल के बहुत से नगर-राज्यों

---

(१) कौ० अर्थ० १। ७।
(२) कौ० अर्थ० १। ६।
(३) 'तमाचार्य्यं शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यस्स्वामिनमिव चानुवर्तेत।'
(कौ० अर्थ० १। ६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ब्राह्मण जाति या पुरोहितश्रेणी प्रधान थी। ब्राह्मण राज्य के सब नियमों या विधानों से ऊपर थे। इन राज्यों में राजा के अतिरिक्त पुरोहित की बहुत मुख्यता थी और राज्य का रक्षक पुरोहित को ही समझा जाता था।[1] पर कौटिल्य के विचार में पुरोहित को यह प्रमुख स्थान प्राप्त नहीं था। उसे दंड भी दिया जा सकता था। वह दंड से ऊपर नहीं था। अर्थशास्त्र में लिखा है कि "यदि कोई पुरोहित आज्ञा देने पर अछूत को वेद न पढ़ाय या अछूत का यज्ञ कराने से इन्कार करे, तो उसको पद-च्युत कर दे।"[2] यदि पुरोहित को इस प्रकार आज्ञा दी जा सकती थी या इस ढंग से वह पदच्युत किया जा सकता था, तो निस्संदेह वह राजा के ऊपर नहीं था। कौटिल्य ने पुरोहित की यह महिमा या तो प्राचीन परंपरा के प्रवाह में आकर लिख दी है और या सम्राट् चंद्रगुप्त और अपनी स्थिति को सम्मुख रखकर ही यह बात लिखी गई है। चाणक्य चंद्रगुप्त का प्रधान मंत्री और पुरोहित दोनों था। विशाखदत्त के शब्दों में सम्राट् चंद्रगुप्त 'सचिवायत्तसिद्धि' था।[3] इसमें संदेह नहीं कि चंद्रगुप्त चाणक्य द्वारा निर्दिष्ट पथ का उसी प्रकार अनुसरण करता था, जैसे शिष्य आचार्य का, भृत्य स्वामी का या पुत्र पिता का करता है। पर चाणक्य के राजनीतिक विचारों में राजा की स्थिति पुरोहित के इस तरह अधीन न थी। अन्यथा, पुरोहित

---

(१) ऐतरेय ब्राह्मण ८। २४।

(२) 'पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तमक्षुष्यमाणं राजा अवक्षिपेत्।' (कौ० अर्थ० १। १०)

(३) विशाखदत्त—मुद्राराक्षस, अंक ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दंड देने का कुछ अभिप्राय नहीं हो सकता है। फिर, पुरोहित अष्टादश तीर्थों में अन्यतम है और राजा को इन तीर्थों पर अपने गुप्तचरों द्वारा कड़ी निगाह रखनी है।[1] राजा ही इन तीर्थों को नियत करता है।[2] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चाणक्य के राजशास्त्र में पुरोहित की स्थिति राजा से ऊपर नहीं है। राज्य के संपूर्ण शासन-सूत्र राजा के अधीन हैं। राजा ही राज्य का वास्तविक स्वामी तथा संचालक है और इस महत्त्वपूर्ण कार्य के संपादन के लिये यह आवश्यक है कि वह पूर्ण तथा आदर्श मनुष्य हो। पर फिर भी उससे भूलें हो सकती हैं। अतः किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है, जो उसे इन भूलों से सावधान करता रहे। यह व्यक्ति पुरोहित है।

पुरोहित के अतिरिक्त शासन में राजा की सहायता के लिये अमात्य भी होने चाहिएँ। अमात्य राजा को सलाह भी देंगे और शासन-कार्य में उसका हाथ भी बटाएँगे। राजकीय कार्य या राजवृत्ति तीन प्रकार की होती है—प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय। राजा जिन बातों को स्वयं देखे, वे प्रत्यक्ष हैं। दूसरों से पूछकर जिन बातों को किया जाय, वे परोक्ष हैं। किए हुए कार्य से न किए हुए कार्य का अनुमान करके जिन कार्यों को किया जाय, वे अनुमेय हैं। अब इस त्रिविध राजवृत्ति में 'परोक्ष' अमात्यों द्वारा संपन्न होता है। ये परोक्ष कार्य क्यों होते हैं और अमात्यों द्वारा इन्हें कराने की क्यों आवश्यकता होती है, इस बात को चाणक्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—"सब काम एक साथ तो होते नहीं, फिर

(१) कौ० अर्थ० १। १२।
(२) कौ० अर्थ० ८। १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म होते भी अनेक हैं और वे अनेक स्थानों पर होते हैं, अतः यदि राजा स्वयं ही सब कार्यों को करने लगे तो उचित समय और उपयुक्त स्थान का उल्लंघन (अत्यय) हो जायगा, अतः इन परोक्ष कार्यों को अमात्यों द्वारा कराया जाय।"[1] अब यदि वस्तुतः कोई ऐसा उपाय हो, जिससे राजा एक साथ बहुत से काम कर सके और एक समय में अनेक स्थानों पर कार्य कर सके; या राजकीय कार्य ही एक समय में अनेक न हों या एक समय में अनेक स्थानों पर न हों, तो अमात्यों की कोई आवश्यकता न होगी, क्योंकि अमात्यों की आवश्यकता तो 'परोक्ष राजवृत्ति' के लिये ही है। राजवृत्ति का स्वरूप ही ऐसा है कि वह एक व्यक्ति द्वारा संपन्न नहीं हो सकती। उसके लिये सहायक चाहिएँ। "जैसे एक पहिए की गाड़ी नहीं चलती, वैसे ही सहायता के बिना राजा का कार्य नहीं चल सकता।"[2] पर यहाँ ध्यान में रखना चाहिए कि अमात्यों और पुरोहित की आवश्यकता इसलिये नहीं है कि राज्य में उनकी राजा से व्यतिरिक्त कोई पृथक् सत्ता या अधिकार है। उनकी आवश्यकता इसलिये है कि राजा पूर्ण नहीं है, उसमें कुछ आंतरिक त्रुटियाँ हैं, कुछ स्वाभाविक न्यूनताएँ हैं। राजा की इस असर्वशक्तिमत्ता से ही पुरोहित या अमात्यों की आवश्यकता की जाती है।

---

(१) 'अयौगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वात् अनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूत् इति परोक्षम् अमात्यैः कारयेत् इति।'

(कौ० अर्थ० १। ८)

(२) 'सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।'

(कौ० अर्थ० १। ७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौटिल्य का यही अभिप्राय अर्थशास्त्र के एक अन्य प्रकरण द्वारा भी स्पष्ट होता है। कौटिल्य के अनुसार राजा की शक्तियाँ तीन होती हैं—प्रभाव-शक्ति, उत्साह-शक्ति और मंत्र-शक्ति।[1] इनमें प्रभाव-शक्ति का अभिप्राय है, कोश और सेना की शक्ति। उत्साह-शक्ति से राजा के अपने शौर्य, स्वास्थ्य, शिक्षा, पराक्रम आदि द्वारा उत्पन्न आंतरिक उत्साह का ग्रहण होता है। मंत्र-शक्ति का अभिप्राय उस परामर्श और सलाह से है, जिसे प्राप्त करने में राजा समर्थ होता है। पर ध्यान में रखने की बात यह है कि ये सब शक्तियाँ राजा में निहित हैं। यदि किसी राजा के मंत्री उत्तम हैं, उसकी परामर्श-सभा बड़ी है, तो यह उसकी अपनी शक्ति है, जिसका कि वह अपनी वस्तु की तरह उपयोग कर सकता है। यही कारण है कि इन तीनों शक्तियों में किसका अधिक महत्त्व है, इस बात पर कौटिल्य ने विस्तृत रूप से विचार किया है और उत्साह-शक्ति, प्रभाव-शक्ति तथा मंत्र-शक्ति में पिछली पिछली शक्ति अधिक महत्त्व-पूर्ण है, यह परिणाम निकाला है। कोश, सेना और मंत्री सब राजा के सहायक हैं। जिस प्रकार राजा के लिये उसका अपना उत्साह उपयोगी है, उसी तरह ये भी। ये सब राजा की दृष्टि से एक ढंग की वस्तुएँ हैं।

कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार राजा जिन मंत्रियों से सलाह लेता है, जिनके द्वारा उसकी मंत्रिपरिषद् का निर्माण होता है, वे मंत्रिपद पर अपने किसी अधिकार से आरूढ़ नहीं होते। न वे जनता के प्रतिनिधि या स्वाभाविक नेता होने के कारण या जनता के प्रति उत्तरदायी होने के कारण ही

(१) कौ० अर्थ० ६। १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्रिपद प्राप्त करते हैं। कौटिल्य के अनुसार मंत्री किसे बनाया जाय और किसे नहीं, यह पूर्णतया राजा की इच्छा पर निर्भर है। क्योंकि राजा पूर्ण नहीं है, अतः उसे सहायक की—सलाहकार की—आवश्यकता है, इसी के लिये मंत्री बनाए जाने चाहिएँ और ये मंत्री ऐसे होने चाहिएँ, जिनसे राजा का हित संपादित हो। मंत्रणा के विषय पर अर्थशास्त्र में विस्तार से विचार किया गया है। मंत्रणा के लिये राजा को एक ऐसा भवन बनवाना चाहिए जहाँ से कोई भी खबर बाहर न जा सके, जो गुप्त स्थान पर हो और पक्षी तक जिसे न देख सकते हों।[1] जब तक इस बात का पूरा प्रबंध न कर लिया जाय कि बात-चीत बाहर न निकल जायगी, तब तक मंत्रगृह में प्रवेश नहीं करना चाहिए।[2] जो कोई बात-चीत को खोल दे, उसे मृत्यु-दंड दिया जाय।[3]

पुराने राजतंत्र राज्यों में यह बहुत आवश्यक समझा जाता था कि मंत्रणा गुप्त रहे, इसी लिये आचार्य भारद्वाज का मत था कि सदा अकेला ही राजा आवश्यक कार्यों पर विचार करे, क्योंकि मंत्रियों के भी मंत्री होते हैं और उनके भी अपने। इस प्रकार मंत्रियों की परंपरा मंत्रणा को गुप्त नहीं रहने देती। पर आचार्य विशालाक्ष के खयाल में अकेले ठीक मंत्रणा नहीं हो सकती। राजवृत्ति या राजकीय कार्य ही ऐसे हैं कि वे प्रत्यक्ष होने के अतिरिक्त परोक्ष और अनुमेय

(१) 'तदुद्देशः संवृतः कथानामनिस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात्।'
(कौ० अर्थ० १। १५)

(२) 'तस्मान्मंत्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत्।'
(कौ० अर्थ० १। १५)

(३) 'उच्छिद्येत मंत्रभेदी।' (कौ० अर्थ० १। १५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हैं। अतः परोक्ष तथा अनुमेय राजवृत्ति के लिये मंत्रियों की आवश्यकता है। इसलिये राजा को चाहिए कि बुद्धिमान व्यक्तियों से मंत्रणा किया करे। किसी को भी नीची निगाह से न देखे, सबकी सलाह सुने। यदि बालक भी कोई काम की बात कहे, तो समझदार आदमी उसे ग्रहण कर ले। पराशर आचार्य इससे भी सहमत नहीं हैं। उनकी सम्मति में इस तरह मंत्रणा तो हो जायगी, पर वह गुप्त न रह सकेगी। इसलिये राजा को जो काम करना हो, उससे उलटा मंत्रियों से पूछे। पर आचार्य पिशुन का खयाल है कि जब इस ढंग से सलाह की जाती है, तब मंत्री लोग विशेष परवाह नहीं करते। इसलिये जिन लोगों से जिन कामों का संबंध हो, उनके विषय में उन्हीं से सलाह ले। ऐसा करने से उचित सलाह भी मिल जाती है और मंत्र की रक्षा भी हो सकती है।[१] इन पुरातन आचार्यों के मत उद्धृत कर अंत में कौटिल्य ने अपनी सलाह दी है। कौटिल्य के मत में राजा को तीन या चार मंत्रियों से सलाह करनी चाहिए। यदि राजा एक मंत्री के साथ परामर्श करे, तो गहन विषयों में किसी परिणाम पर न पहुँच सकेगा। साथ ही, एक मंत्री होने से उसकी महत्ता बहुत बढ़ जायगी, वह यथेष्ट काम करेगा, बेलगाम हो जायगा। यदि दो मंत्री हों, तो मुश्किल यह है कि यदि वे मिल जायँ, तब तो राजा को दबा लेंगे और यदि परस्पर झगड़ें तो काम बिगाड़ देंगे। यदि तीन और चार मंत्री हों तो ये दोष न आवेंगे और सब काम ठीक तरह हो जायगा। यदि मंत्री इनसे अधिक हों, तो किसी एक निर्णय

(१) कौ० अर्थ० १। १४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पहुँचना कठिन हो जायगा और मंत्र को गुप्त रखना भी संभव न होगा।[1]

कौटिलीय अर्थशास्त्र के इस संदर्भ से स्पष्ट है कि राजा को मंत्रणा की आवश्यकता है, इसी लिये मंत्री चाहिएँ। अन्यथा, मंत्रियों की कोई जरूरत नहीं। मंत्रिपरिषद् का विधान चाणक्य ने अवश्य किया है, पर उसका हेतु केवलमात्र राजा की अपूर्णता है। यदि राजा को पूर्ण बनाया जा सके, तो न उसे पुरोहित की आवश्यकता होगी, न मंत्रियों की और न अमात्यों की। इन सबकी आवश्यकता इसी लिये होती है, क्योंकि राजा पूर्ण नहीं है, सर्वशक्तिमान् नहीं है और राजवृत्ति पूरी तरह से प्रत्यक्ष नहीं है। वह परोक्ष और अनुमेय भी है।

यदि राजा अपना शासन-कार्य ठीक प्रकार से करता रहे, तब तो कोई समस्या उत्पन्न नहीं हो सकती। जनता उससे संतुष्ट रहेगी, प्रजा उसकी भक्त बनी रहेगी। पर यदि राजा अपने काम में ढील करेगा, तो प्रजा असंतुष्ट होगी, जनता में उपेक्षा का भाव उत्पन्न हो जायगा। "यदि राजा जो न करना चाहिए, उसे करे और जो करना चाहिए उसे न करे, जो नहीं देना चाहिए उसे दे, और जो देना चाहिए उसे न दे, जिसे दंड देना चाहिए उसे दंड न दे और जिसे दंड नहीं देना चाहिए उसे दंड दे, जनता के योगक्षेम में प्रमाद और आलस्य करे, तो जनता का विनाश हो जायगा, उसमें लोभ उत्पन्न हो जायगा और राजा के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा

(१) कौ० अर्थ० १।१४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायगा।"[1] इसलिये राजा को चाहिए कि वह अपने कार्य में खूब उत्साह रखे, उत्साहपूर्वक अपने कार्य का संपादन करे। "जब राजा कर्मण्य होता है, तब राजकर्मचारी भी कर्मण्य रहते हैं, जब राजा प्रमाद करने लगता है, तब राज-कर्मचारी भी प्रमादी हो जाते हैं अतः राजा को सदा कर्मशील और उत्थानशील होना चाहिए।"[2] कौटिल्य के राजशास्त्र में राजा को मशीन की तरह से काम करना चाहिए। वह क्षण भर के लिये भी ढीला नहीं पड़ सकता। उसके एक एक क्षण का समय-विभाग बना हुआ है। उसमें वह ठीक समय पर काम करता है। सब कार्यों के लिये समय निश्चित है और प्रत्येक कार्य अपने समय पर किया जाता है। उसको सोने के लिये कुल तीन घंटे दिए गए हैं। मौज करने के लिये डेढ़ घंटे का समय दिया गया है, पर आवश्यकता पड़ने पर इस समय में भी मंत्रणा की व्यवस्था की गई है। दिन-रात का शेष संपूर्ण भाग राजकार्यों में व्यग्र होकर ही उसे व्यतीत करना चाहिए।[3] यह सर्वथा उपयुक्त भी है, क्योंकि "कर्मण्यता या उत्थान ही राजा का व्रत है, राज्यकार्य का संपादन ही

(१) 'अकार्याणां च करणैः कार्याणां च प्रणाशनैः।
अप्रदानैश्च देयानां अदेयानां च साधनैः॥
अदण्डनैश्च दंड्यानां अदंड्यानां च दंडनैः।
राज्ञः प्रमादालस्याभ्यां योगक्षेमविधावपि।
प्रकृतीनां क्षयो लाभो वैराग्यं चोपजायते॥'
(कौ० अर्थ० ७।५)

(२) 'राजानामुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठंते भृत्याः। प्रमाद्यंतमनुप्रमाद्यंति।'
(कौ० अर्थ० १।१९)

(३) कौ० अर्थ० १।१९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा का यज्ञ है, सबके साथ समवृत्ति ही राजा की दक्षिणा है।''[1] और ''यदि राजा कर्मण्य नहीं होगा, तो उसका विनाश निश्चित है, जो कुछ प्राप्त है या प्राप्त होना है वह सब अकर्मण्य होने से नष्ट हो जायगा।''[2] इसलिये राजा को चाहिए कि वह सदा कर्मण्य बना रहे, प्रजा का हित-संपादन करता रहे, अन्यथा उसका तथा राज्य का विनाश हो जायगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आचार्य चाणक्य के मत में राज्य में राजा का बहुत महत्त्व है। राजा ही वस्तुतः राज्य का संचालक और कर्ता-धर्ता है। यदि राजा न हो, तो राज्य का ठीक प्रकार से संचालन न हो सकेगा। राजा का न होना राज्य के लिये बहुत बड़ी विपत्ति है। इसी लिये यदि कभी राजा पर कोई संकट उपस्थित हो, तो उसका राज्य पर भी बड़ा असर पड़ेगा। समझ लीजिए, राजा भयंकर रूप से बीमार पड़ा है, उसके मरने की पूरी संभावना है, अब क्या किया जाय? या, अन्य किसी कारण से राजा कार्य करने में असमर्थ हो, तो किस ढंग से कार्य को सँभाला जाय? चाणक्य ने इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है। ऐसे समय में प्रधान अमात्य को विशेष सचेष्टता के साथ कार्य करना चाहिए। राजा की मृत्यु होने की संभावना होते ही प्रधान

---

(१) 'राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कर्मानुशासनम्।
दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम्॥'
(कौ० अर्थ० १। १६)

(२) ''अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च।''
(कौ० अर्थ० १।१६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमात्य को चाहिए कि वह जनता को राजा के दर्शन महीने में या दो महीनों में एक बार से अधिक न करवाए। वह लोगों से कहे—"आजकल राजा देश की पीड़ा को दूर करनेवाले, शत्रुओं का विनाश करनेवाले, आयु बढ़ानेवाले या पुत्र देनेवाले कर्मों में लगा हुआ है।" इस बहाने से वह लोगों को यह न मालूम होने दे कि राजा बीमार है या किसी संकट में है। जब बहुत समय गुजर जाय और यह आवश्यक हो कि राजा को जनता के सम्मुख लाया जाय, तब किसी दूसरे आदमी को राजा का वेश पहनाकर उसका दर्शन करा दे। मित्र, शत्रु तथा दूतों के साथ भी यही चाल चली जाय। ऐसे समय में प्रधान अमात्य ही राज्य का संपूर्ण कार्य करता रहे। जो आज्ञाएँ जारी करनी जरूरी हों, उन्हें दौवभरिक और आंतर्वंशिक द्वारा राजा के नाम पर प्रकाशित करे। विदेशी इन आदमियों से राजा की तरफ से स्वयं बात करें। इस बीच में धीरे धीरे संपूर्ण शासनभार युवराज पर डालता रहे और जब युवराज पूरी तरह शासनकार्य को सँभाल ले, तब जनता के सम्मुख राजा की मृत्यु के समाचार को प्रगट होने दिया जाय।[1] राजा पर आए संकट को इस प्रकार छिपाने का कारण यही है कि जनता में यह बात मालूम होते ही उथल पुथल मच जाने की संभावना रहती थी। अपने राज्य में विविध सामंत विद्रोह करने की तैयारी शुरू कर देते थे, पुराने संघराज्यों में स्वाधीनता की भावनाएँ क्रिया में परिणत होने की आशा करने लगती थीं, आटविक लोग अव्यवस्था मचाना शुरू कर देते थे। सीमावर्त्ती दुर्गों में षड्यंत्र शुरू हो जाते थे, भिन्न भिन्न राज-

(१) कौ० अर्थ० ५। ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार स्वयं राजा होने की फिकर प्रारंभ कर देते थे। दूसरे राज्यों में—शत्रुदेशों में राजा के संकट से लाभ उठाने के लिये तैयारी प्रारंभ हो जाती थी। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में तूफान आ जाता था। साम्राज्यवादियों में अपनी आकांक्षाओं की पूर्त्ति की संभावना प्रबल हो उठती थी। लोग सोचते थे, मौका आया है, कुछ कर देखो। मौके बार बार नहीं आया करते। "मौके की ताक में बैठे हुए मनुष्य को एक बार ही मौका मिला करता है। यदि वह दुबारा मौका ढूँढ़े, तो मौका उसके हाथ नहीं लगता।"[1] ऐसे समय में प्रधान अमात्य को कैसी विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ता होगा, इसकी कल्पना कर सकना कठिन नहीं है। कौटिल्य ने इन सब विपत्तियों की कल्पना कर उनके प्रत्युदाय के साधनों का बड़ा विशद रूप से वर्णन किया है।[2] पुराने ढंग के कुलतंत्र राज्यों (Tribal States) में राजा के बीमार पड़ने या मरने पर इस ढंग से किसी भारी आपत्ति की संभावना न हो सकती थी, क्योंकि इन राज्यों में राज्य का आधार एक व्यक्ति न था। तब शासन श्रेणी, जाति या जनता का होता था। पर अब इन प्रादेशिक राज्यों और साम्राज्यों में राज्य का आधार एक व्यक्ति बन गया था। पुराने छोटे छोटे राज्यों की स्मृति अब भी पूरी तरह नष्ट न हुई थी। गणराज्यों में स्वतंत्रता की भावनाएँ तो अभी काफी प्रबल रूप में विद्यमान थीं। राजतंत्र राज्यों के पुराने राजवंशों के लोग अभी तक अपने अतीत गौरव

(१) 'कालश्च सकृदभ्येति यं नरं कालकांक्षिणम्।
दुर्लभस्स पुनस्तस्य कालः कर्म चिकीर्षतः॥'
(कौ० अर्थ० ५।६)

(२) कौ० अर्थ० ५।६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्मृति रखते थे। इसी लिये राजा को विपत्ति-ग्रस्त देखते ही वे फिर से अपने अतीत गौरव को पुनः स्थापित करने का स्वप्न देखने लगते थे। सब ओर विद्रोह और अव्यवस्था के चिह्न प्रगट होने लगते थे। आचार्य चाणक्य—जो भारतीय इतिहास में सबसे बड़ा साम्राज्यवादी हुआ है—इस समस्या को खूब समझता था। इसी लिये उसने इस बात की इतनी चिंता की है। निस्संदेह, कौटिल्य के राजशास्त्र में राजा का बहुत ही ऊँचा स्थान है। वह राज्य का आधार है, वह 'एक-राज' और 'एकेश्वर' है। उसके विना उसके 'चातुरत' साम्राज्य की स्थापना संभव ही नहीं है।

इस प्रकार का 'एकराज' स्वाभाविक रूप से असाधारण-तया कर्मण्य होकर, उत्साह तथा उत्थान की शक्ति से संपन्न होकर शासन-सूत्र का संचालन कर सकता था। यदि वह जरा भी ढील करे, गलती करे तो परिणाम क्या होगा? जनता या तो शत्रु से मिल जायगी या विद्रोह कर देगी।[1] जनता की ऐसे राजा में भक्ति इसी कारण तो हो सकती है, क्योंकि वह सम्यक् प्रकार से शासन करता है। अन्यथा जनता उसके पक्ष में क्यों कर हो? कौटिल्य ने इस बात को अपने विजि-गीषु राजा को समझाने का खूब प्रयत्न किया है। जनता विद्रोह कर सकती है, शत्रु का पक्ष ग्रहण कर सकती है, किसी समिति को सहायता देकर उसे राजा बना सकती है। यदि राजा प्रमाद करेगा, तो जनता में ये सब प्रवृत्तियाँ जागरित

(१) 'क्षीणाः प्रकृतयो लोभं लुब्धा यांति विरागताम्।
विरक्ता यांत्यमित्रं वा भर्त्तारं घ्नन्ति वा स्वयम्॥'
(कौ० अर्थ० ७। ५)

५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110739

हो उठेंगी। कौटिल्य ने अपने विजिगीषु को इस बात का भी उपदेश किया है कि जिन शत्रु-देशों में राजा प्रजा के प्रति कल्याणकारी न हो, उनमें जनता को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न करे, जनता के वैराग्य या उपेक्षा भाव से लाभ उठावे, गुप्तचरों द्वारा शत्रु-देशों की जनता में राजा के प्रति विरोध-भाव को बढ़ावे।[1] इन उपदेशों का वर्णन करता हुआ चाणक्य यह खूब समझता था कि राजतंत्र राज्यों में राजा की सत्ता और शक्ति राजा के अपने गुणों पर आश्रित है। इसी लिये वह अपने राजतंत्र में राजा को सर्वगुणसंपन्न आदर्शपूर्ण मनुष्य बनाने का प्रयत्न करता था और फिर भी मनुष्य की निर्बलताओं को दृष्टि में रखकर उनके लिये उपायों का उपदेश करता था। राजा के लिये उसका अंतिम सुवर्णीय आदर्श यह है—"प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है। प्रजा के हित में ही राजा का हित है। अपने स्वार्थों को पूर्ण करने में राजा का हित नहीं है, उसका हित तो प्रजा के स्वार्थों को पूर्ण करने में ही है।[2]"

---

(१) कौ० अर्थ० १।१४; ७।५।

(२) 'प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां तु हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।'
(कौ० अर्थ० १।१९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar